पशुधन ज्ञान

वर्ष : 5 | अंक : 01 | जनवरी, 2019 | अर्धवार्षिक, हिसार | शुल्क : ₹30/-

प्रकाशक
विस्तार शिक्षा निदेशालय
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय
हिसार – 125004 (हरियाणा)

प्रकाशक:

डॉ. आर.एस.श्योकन्द

निदेशक, विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय

हिसार-125004 (हरियाणा)

सम्पादक:

डॉ. देवेन्द्र सिंह

सम्पादकीय मण्डल:

डॉ. वन्दना भनोट

डॉ. दिपिन चन्द्र यादव

डॉ. राजेश कुमार

प्रकाशक: डॉ. आर.एस. श्योकन्द, निदेशक, विस्तार शिक्षा निदेशालय, लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार ने डॉ. देवेन्द्र सिंह के सम्पादन में **डोरेक्स ऑफसैट प्रिन्टर्स, हिसार** से लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार के लिए मुद्रित करवा कर जनवरी, 2019 को प्रकाशित किया।

निर्देश: इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है तथा लेखकों द्वारा पाठकों की जानकारी के लिए प्रस्तुत की गई हैं। सम्पादक, प्रकाशक व मुद्रक तथा लेखकों के द्वारा दी गई जानकारी के लिए उत्तरदायी नहीं हैं। ब्राँडेड दवाइयों व उत्पादों के नाम केवल उदाहरण के रूप में दिए हैं तथा इन्हें विश्वविद्यालय की ओर से सिफारिश न माना जाए। पाठकों को यह सलाह दी जाती है कि किसी भी जानकारी को प्रयोग में लाते समय विशेषज्ञों की सलाह लें। किसी भी त्रुटि के लिए सम्पादक से सम्पर्क किया जा सकता है। सभी विवादों का न्यायक्षेत्र हिसार न्यायालय होगा।

डॉ. गुरदयाल सिंह
कुलपति
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं
पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

संदेश

हमारे देश की आर्थिक व्यवस्था मुख्यतया: कृषि कार्यक्षेत्र पर आधारित है। पशुपालन कृषि का अभिन्न अंग है। पशुपालन के बिना देश की खाद्य व्यवस्था का प्रबंधन बहुत कठिन है। सच तो यह है कि बढ़ती जनसंख्या के कारण कम होते कृषि क्षेत्र ने आज पशुपालन को अत्याधिक प्रगतिशील क्षेत्र बना दिया है। पिछले कुछ दशकों में पशुपालन व्यवसाय में निरंतर वृद्धि देखने को मिली है। 19वीं अखिल भारतीय पशुधन-गणना के आंकड़ों के अनुसार सन् 2012 में भारत में पशुधन की संख्या 512 मिलियन थी। इसी के परिणाम स्वरूप हमारा देश विश्व में अधिकतम दुग्ध उत्पादक देश बना है। विश्व के कुल दूध उत्पादन के 13.1 प्रतिशत भाग का श्रेय हमारे देश को ही जाता है। परन्तु फिर भी भारत में प्रति व्यक्ति 252 ग्राम दूध ही उपलब्ध है, जो कि 265 ग्राम प्रति व्यक्ति विश्व की औसत से कम है।

बड़े हर्ष का विषय है कि हरियाणा प्रदेश में वर्ष 2014-15 में कुल 79 लाख टन दुग्ध उत्पादन हुआ जिस कारण हरियाणा के प्रति व्यक्ति को हर दिन 805 ग्राम दूध की उपलब्धता थी, जो विश्व की औसत से बहुत अधिक है। वर्ष 2015-16 में प्रदेश में दुग्ध उत्पादन और भी बढ़ कर 83 लाख टन हो गया है तथा अब हर दिन प्रति व्यक्ति 835 ग्राम दूध की उपलब्धता हो गई है। हरियाणा में इस प्रकार दुग्ध उत्पादन में एक वर्ष में 6 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि विश्व स्तर पर औसत वृद्धि केवल 3 प्रतिशत के लगभग आँकी गई है।

पशुजन्य खाद्य पदार्थों की आवश्यकता निरन्तर बढ़ रही है। वर्ष 2009-10 के आँकड़ों के अनुसार, हरियाणा में पशुधन क्षेत्र का उत्पादन लगभग 18,000 करोड़ रुपये था जो कि खेती-बाड़ी उद्योग के सकल उत्पाद 37,000 करोड़ रुपये का लगभग 50 प्रतिशत था। इस क्षेत्र में किसानों की अपार सफलता की सम्भावना को देखते हुए हमारे विश्वविद्यालय द्वारा पूरे प्रदेश के किसानों के ज्ञान व कौशल वर्धन के लिए बड़े पैमाने पर कार्य किया जा रहा है। विस्तार शिक्षा निदेशालय की इन कार्यों में विशेष भूमिका है।

विश्वविद्यालय के विस्तार शिक्षा निदेशालय द्वारा प्रकाशित पशुधन ज्ञान पत्रिका वास्तव में वैज्ञानिकों के शोध, ज्ञान, विचार, परामर्श व अन्य लाभप्रद जानकारियों का विशाल स्रोत है। इस पत्रिका के नए अंक के प्रकाशन के अवसर पर विस्तार शिक्षा निदेशक, पत्रिका के सम्पादक व विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक बधाई के पात्र हैं। किसान वर्ग, पशुपालक व पशु उत्पादों से सम्बंधित व्यवसायिओं से मेरा निवेदन है कि वे पत्रिका में दी गई जानकारियों को स्वयं संचित कर अन्य जनमानस में भी बाँटे ताकि यह ज्ञान शिक्षित और अशिक्षित सभी को लाभान्वित कर हमारे उद्देश्य की पूर्ति करे।

(गुरदयाल सिंह)

LALA LAJPAT RAI UNIVERSITY OF VETERINARY AND ANIMAL SCIENCES
HISAR 2010
"राष्ट्रीन्नयनं पशुवर्द्धनम्"

डॉ. आर.एस. श्योकन्द
निदेशक, विस्तार शिक्षा
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं
पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

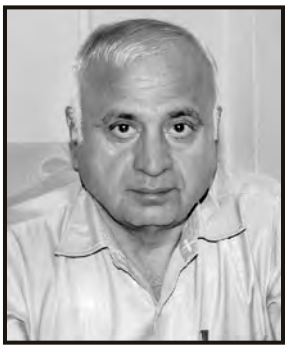

संदेश

पर्यावरण में निरन्तर हो रहे परिवर्तन और कम होती जा रही कृषि योग्य भूमि के कारण किसानों की आर्थिक स्थिति पर बड़ा ही प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। विषम परिस्थितियों में कृषि के साथ-साथ पशुपालन अपना कर किसान अधिक आय अर्जित कर अपनी आर्थिक स्थिति सुधार सकते हैं। ग्रामीण इलाकों में नकद लाभ और लगातार आय का पशुपालन से बढ़िया और कोई विकल्प नहीं है। आज के युग में कृषि के विविधिकरण का बहुत महत्त्व है। आवश्यकता है कि कृषि के साथ-साथ किसान भाई पशुपालन, मुर्गीपालन, मछली पालन व पशुओं से प्राप्त होने वाले अन्य खाद्य पदार्थों के उत्पादन को व्यावसायिक रूप से अपनाएँ। हरियाणा प्रान्त ने प्रारम्भ से ही पशुपालन क्षेत्र में बहुत उन्नति की है।

कई बार लाभदायक होते हुए भी पशुपालन विषय पर वैज्ञानिक जानकारी न होने के कारण पशुपालकों को पूरा आर्थिक लाभ नहीं मिल पाता है। इसलिए कृषक वर्ग के लिए यह अति आवश्यक है कि उसे पशुपालन क्षेत्र में तकनीकी विकास की नवीनतम व लाभदायक जानकारी प्राप्त करवाई जाए। पशुपालकों के उत्थान में लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार के वैज्ञानिकों का सराहनीय योगदान रहा है। जागरुक पशुपालक वैज्ञानिक विधियाँ अपनाकर आर्थिक रूप से लगातार सक्षम बन रहे हैं, परन्तु बहुत से पशुपालक ऐसे भी हैं, जिन्हें इन आधुनिक वैज्ञानिक विधियों का ज्ञान नहीं है। ऐसे किसानों को यह समझना चाहिए कि उन्नत वैज्ञानिक प्रणालियों को अपनाएँ बिना केवल परम्परागत तरीकों से कोई भी व्यवसाय विकसित रूप प्राप्त नहीं कर सकता क्योंकि परिवर्तन प्रकृति का नियम है।

पशुपालन के क्षेत्र में उच्चतम कोटि के तकनीकी विकास की आवश्यकता को देखते हुए विश्वविद्यालय अत्याधुनिक प्रयोगशालाओं में पशुओं से जुड़ी विभिन्न समस्याओं पर अनुसंधान कर उनके निवारण में कार्यरत है। यहाँ देश-विदेश से उच्च शिक्षा प्राप्त वैज्ञानिक किसानों की उन्नति के लिए सराहनीय कार्य कर रहे हैं। विश्वविद्यालय के विस्तार शिक्षा निदेशालय द्वारा प्रकाशित 'पशुधन ज्ञान' पत्रिका का वर्तमान अंक पाठकों को सौंपते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है, क्योंकि इसके द्वारा पशुपालन से सम्बंधित हर प्रकार का ज्ञान पशुपालकों के घर-घर पहुँचेगा।

कृषक भाईयों व बहनों से विनम्र निवेदन है कि वे इस पत्रिका से अर्जित ज्ञान को अपना कर अन्य किसान पशुपालकों को भी बांटें। मैं विश्वविद्यालय के सभी वैज्ञानिकों, सहयोगी अधिकारियों व सम्पादकीय मण्डल का धन्यवाद करते हुए आग्रह करता हूँ कि वे भविष्य में भी इस पत्रिका द्वारा पशुपालकों को लाभान्वित करने में सदैव तत्पर रहें।

(आर.एस. श्योकन्द)

LALA LAJPAT RAI UNIVERSITY OF VETERINARY AND ANIMAL SCIENCES
HISAR 2010
"राष्ट्रीन्नयनं पशुवर्द्धनम्"

सम्पादक की कलम से...

किसान भाईयों, प्राचीन काल से ही मानवीय सभ्यता के विकास में पशुओं का बहुत ही महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। साल दर साल समय बदलता गया सभ्यता के विकास में शताब्दियों से निरंतर बदलाव होता गया। लकड़ी के घूमते चकरे ने बड़े भारी भरकम विमानों का रूप ले लिया फिर भी बैलगाड़ी, घोड़ा–घाड़ी और अन्य पशुओं का महत्त्व आज भी ज्यों का त्यों बना हुआ है। आधुनीकरण के वर्तमान युग में भी हम दूध–दही, मक्खन, पनीर, गोश्त, अण्डे व ऊन आदि भौतिक वस्तुओं के लिए पशुओं पर निर्भर हैं। वास्तव में वास्तविकता तो ये है कि हमारी खाद्य व्यवस्था ही न संभले यदि पशुपालन न किया जाए तो, क्योंकि बढ़ते पर्यावरण प्रदूषण और भूमंडलीय विपदाएँ जैसे अकाल, बाढ़ आदि में पशुधन ही आर्थिक संकट से निपटने का सस्ता और सरल साधन है। कृषि के साथ आसानी से होने के कारण इस पर खर्चा भी कम होता है। वैसे भी बढ़ती जनसंख्या के साथ हमारी जमीन बढ़ने वाली है नहीं। पीढ़ी दर पीढ़ी परिवारों में सदस्य तो बढ़ते हैं पर किसान के पास उनको बाँटने के लिए प्रर्याप्त भूमि सम्पदा नहीं होती। कम कृषि भूमि में कृषि के साथ पशुपालन ही किसानों का एक अच्छा सहारा बन सकता है। जिससे वह घर की आर्थिक जरूरतें पूरी कर सकता है।

मनुष्य पृथ्वी पर सबसे बुद्धिमान प्राणी है, यदि मानव जाति पशुपालन से लाभ कमाने के लिए अपनी बुद्धि और विवेक से काम लेकर प्राचीन रुढ़िवादी तरीकों से हट कर नये वैज्ञानिक तरीकों से पशुपालन करें तो भाईयों इसमें कोई शक नहीं कि वह पशुपालन में भी पैसा और नाम दोनों प्राप्त कर सकता है। हमारे विश्वविद्यालय द्वारा लगाए गए समय–समय पर मेलों और प्रदर्शनियों में उन्नत पशुपालकों को सम्मानित भी किया गया है। अखबारों और पत्र– पत्रिकाओं में उनका नाम भी हुआ है। हमारी महिला बहनें पशुधन की सेवा बड़े ही सेवाभाव से करती हैं।

भारत में पशुपालन से सम्बंधित बहुत से विश्वविद्यालय हैं, जिनमें लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार भी बहुत विख्यात है। इस विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने पशुपालन से सम्बंधित अनेकों शोध कार्य किए हैं, जो पशु प्रजनन, पशु नस्ल सुधार, पशु आवास, पशु आहार व घातक बीमारियों के निवारण से जुड़े हुए हैं। इन शोध कार्यों के द्वारा जनकल्याण की भावना को बढ़ावा देना ही इनका मुख्य उद्देश्य है।

हमारे विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों की वैज्ञानिक सोच केवल हम तक न रहे, इस उद्देश्य को सम्मुख रख इस सोच और नई तकनीक को घर–घर पहुँचाने के लिए इस ज्ञान को पशुधन–पत्रिका के रूप में संचित कर दिया है। आपको यह जानकर भी खुशी होगी कि इस संचित ज्ञान को पशुधन–पत्रिका के अंक के रूप में आपके पठन–पाठन लायक बना कर प्रस्तुत किया जा रहा है। इस पत्रिका में पशु नस्लों की जानकारी, नस्ल सुधार, पशु आवास प्रबंधन, पशु आहार प्रबंधन विभिन्न मौसमों में पशुओं की देखभाल, घातक बीमारियों से बचाव, टीकाकरण, गर्भकाल में पशुओं की देखभाल, जीवाणु–विषाणु जनित रोग, दुग्ध और माँस उत्पादन, सफल पशुपालक की कहानी आदि विषयों पर जानकारी आपको मिलेगी। यह पत्रिका आपके लिए बहुत ही ज्ञानवर्धक व उपयोगी सिद्ध होगी। मेरा पशुपालकों से करबद्ध निवेदन है कि पत्रिका में बताई गई दवाइयों को चिकित्सक की सलाह लेकर ही पशुओं को दीजिए।

अन्ततः मुझे आशा है कि यह पत्रिका किसानों, पशुपालकों व पशुपालन से जुड़े व्यवसायिक समुदाय के लिए बहुत ही लाभदायक सिद्ध होगी। मैं इस पत्रिका के वर्तमान अंक के सफल प्रकाशन के लिए कुलपति लुवास, विस्तार शिक्षा निदेशक, वैज्ञानिकगण और संपादकीय मंडल का बहुत–बहुत आभार प्रकट करते हुए हार्दिक धन्यवाद करता हूँ।

(देवेन्द्र सिंह)

LALA LAJPAT RAI UNIVERSITY OF VETERINARY AND ANIMAL SCIENCES
HISAR 2010
"राष्ट्रीन्नयनं पशुवर्द्धनम्"

विषय सूची

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठांक
1.	नए डेरी उत्पाद के विकास में अवसर और चुनौतियां	योगेन्द्र सिंह यादव, सुरेश कुमार एवं सोमवीर	1
2.	जैविक दूध उत्पादन	सीताराम गुप्ता, मनोहर लाल सैन एवं राजेन्द्र यादव	4
3.	वाणिज्यिक मछली पालनः किसानों के लिए रोजगार का बेहतर अवसर	प्रीती सिंह, जितेन्द्र यादव एवं अभिनव चौधरी	7
4.	पशुओं में लहू मूतना रोग	राजेन्द्र यादव, विनय कुमार एवं पंकज कुमार	10
5.	रेबीज से सम्बन्धित महत्वपूर्ण जानकारी व बचाव के उपाय	वी.के. जैन, दिव्या अग्निहोत्री एवं तरुन कुमार	12
6.	भेड़–बकरियों में प्लेग (पी.पी.आर.)	राजेन्द्र यादव, विनय कुमार एवं पंकज कुमार	14
7.	पोलिथीनः पशुओं के लिए अभिशाप	वीरेन्द्र सिंह, सुनील राजोरिया एवं राजेश सिंगाठिया	16
8.	''सेक्स्ड सीमन'': पशु प्रजनन के क्षेत्र में विज्ञान का चमत्कार	प्रवीन कुमार, मोहित अंतिल एवं दिपिन चन्द्र यादव	18
9.	कैसे करें नवजात बछड़ों की देखभाल	सज्जन सिंह, राजेन्द्र सिंह श्योकन्द एवं सरिता	20
10.	गाय में बांझपन	मीनाक्षी विरमानी, जितेन्द्र यादव एवं राकेश कुमार मलिक	22
11.	गाय व भैंसों के खुरों का रख–रखाव व पशु के स्वास्थ्य एवं प्रजनन पर प्रभाव	मोहित अंतिल, प्रवीन कुमार एवं दिपिन चन्द्र यादव	24
12.	आधुनिक प्रौद्योगिकी के रूप में पशु आहार में एंजाइमपूरकता का करें इस्तेमाल और किसान रहे खुशहाल	मयूख घोष, शैयद सफिक एवं राजेश कुमार	26
13.	लोबियाः गर्मी के मौसम का हरा चारा	सज्जन सिंह, राजेन्द्र सिंह श्योकन्द एवं दलजीत सिंह	32
14.	भैंस की प्रमुख दुधारू नस्लें	सज्जन सिंह, राजेन्द्र सिंह श्योकन्द एवं दलजीत सिंह	34
15.	भैंसों में असफल गर्भधारण के कारण व उनका निदान	प्रवीन कुमार, मोहित अंतिल एवं दिपिन चन्द्र यादव	36
16.	दूध और दूध उत्पादों में मूल्य संवर्धन से 2022 तक किसानों की आय दोहरीकरण	रचना, मोनिका रानी एवं ऋचा खीरबाट	38
17.	सर्दियों में मुर्गियों की देखभाल	सूदीप सोलंकी, जितेन्द्र यादव एवं दुर्गा गुर्जर	40
18.	शूकर पालन में जैव सुरक्षा की भूमिका एवं सुरक्षा प्रावधान	सुप्रिया यादव, जितेन्द्र यादव एवं ममता सिंह	41
19.	कुक्कुट में तनाव विनियमन का शारीरिक तंत्र और इसके बचाव के उपाय	प्रीती सिंह एवं नरेश सिंह कुंतल	42
20.	पशुओं में पाचन सम्बन्धी विकार एवं निवारण	शालिनी शर्मा, ज्योत्सना मदान एवं निर्मल सांगवान	44
21.	दूध की जीवाणिक गुणवत्ता एवं दुग्ध प्रसंस्करण में स्वच्छ अभ्यास	शालिनी अरोड़ा, हर्ष गुरदित्ता एवं उपासना यादव	45
22.	प्रसवकाल में व प्रसव के पश्चात भैंसों की देखभाल	ऋचा खीरबाट, रचना एवं मोनिका रानी	48
23.	घोड़ों में गर्भावस्था निदान	कनिष्ट बत्तरा एवं रूमा रानी	50
24.	घोड़ों में सर्रा रोग	कनिष्ट बत्तरा, रूमा रानी एवं राजेन्द्र कुमार	52
25.	कुक्कुट रोगों के लिए हर्बल (जड़ी–बूटी) औषधी	प्रीती सिंह एवं नरेश सिंह कुंतल	54
26.	मुर्गियों में इन्फ्लुएंजा रोग	मनीष शर्मा, दिव्या अग्निहोत्री एवं वी.के. जैन	56

LALA LAJPAT RAI UNIVERSITY OF VETERINARY AND ANIMAL SCIENCES
HISAR 2010
"राष्ट्रीन्नयनं पशुवर्द्धनम्"

नए डेयरी उत्पाद के विकास में अवसर और चुनौतियां

योगेन्द्र सिंह यादव, सुरेश कुमार एवं सोमवीर

डेरी विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी महाविद्यालय,
लाला लाजपत राय पशुचिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार।

भारत विश्व में दूध उत्पादन में पहले स्थान पर है तथा वैश्विक दूध उत्पादन का लगभग 17% भारत में ही उपयोग होता है। भारत में श्वेत क्रांति एक असाधारण सफलता की कहानी बताती है, जैसा कि 1950–51 में 104.5 मिलियन टन से दूध उत्पादन था जो आज 155.5 मिलियन टन है। भारत की दूध उत्पादन की दर विश्व की दूध उत्पादन की दर से लगभग दुगुनी है (6.23 प्रतिशत)। भारतीय उपमहाद्वीप दुनिया के उन कुछ क्षेत्रों में से एक है जहां दूध और दुग्ध उत्पादों की खपत ऐतिहासिक रूप से अपनी संस्कृति में शामिल है। भारतीय दूध उत्पादों का इतिहास भारतीय सभ्यता के रूप में पुराना है। भारत में उत्पादित दूध का अनुमानित 50 से 55 प्रतिशत विभिन्न प्रकार के पारंपरिक दूध उत्पादों में परिवर्तित हो जाता है लेकिन उपभोक्ताओं की मांग समय के साथ बदलती रहती है और नए उत्पाद विकास को उपभोक्ता की उम्मीदों और मांगों पर खरा उतरना होगा। पारंपरिक भारतीय डेयरी उत्पादों के मामले में, ये परिवर्तन खाद्य सुरक्षा में सुधार, बेहतर पैकेजिंग, आत्म जीवन में वृद्धि, बेहतर पोषण और चिकित्सीय मूल्य, तालमेल और सुविधा से हैं।

नए डेयरी उत्पाद विकास की प्रक्रिया

नये उत्पाद का विकास उपभोक्ता की मांग और उसकी संतुष्टि पर निर्भर करता है। उत्पाद और प्रक्रिया विकास (आमतौर पर उत्पाद विकास के रूप में जाना जाता है) एक ज्ञात या संदिग्ध उपभोक्ता आवश्यकता को संतुष्ट करने वाले उत्पादों और प्रक्रियाओं को विकसित करने के लिए व्यवस्थित एवं व्यावसायिक रूप से उन्मुख अनुसंधान है। उत्पाद विकास अपने स्वयं के अधिकार में औद्योगिक अनुसंधान का एक तरीका है। यह सामाजिक विज्ञान के साथ प्राकृतिक विज्ञान का एक संयोजन और अनुप्रयोग है– खाद्य विज्ञान, विपणन और उपभोक्ता विज्ञान के साथ प्रसंस्करण– एक प्रकार के एकीकृत शोध में जिसका उद्देश्य

नए उत्पादों का विकास है। उत्पाद विकास प्रक्रिया को विभिन्न चरणों में विभाजित किया जा सकता है तथा नई उत्पाद विकास प्रक्रिया का लक्ष्य कम से कम अनिश्चितता के साथ बाजार में एक नया उत्पाद लाने के लिए होता है। सबसे व्यापक मानक उत्पाद विकास मॉडल के मुख्य कारक निम्नलिखित हैं :

1. उत्पाद की बाजार में स्थिति।
2. उत्पाद रणनीति विकास।
3. उत्पाद डिजाइन।
4. उत्पाद व्यावसायीकरण।
5. उत्पाद प्रमोचन।

प्रत्येक चरण में ऐसी गतिविधियां होती हैं जो परिणाम उत्पन्न करती हैं जिन पर प्रबंधन निर्णय किए जाते हैं। व्यावहारिक रूप से, उत्पाद विकास प्रक्रिया में किए गए कुछ गतिविधियों को छोटा किया जा सकता है या किसी संस्था के संचित ज्ञान और अनुभव के आधार पर कुछ चरणों को छोड़ा जा सकता है। जितने कम चरण होंगे उतनी ही जल्दी उत्पाद बाजार में आएगा, परन्तु इससे लाभ कमाने के अवसर कम हो जाते हैं।

कोई उत्पाद नया है या नहीं?

परियोजना की शुरूआत में ''नए उत्पादों'' में 'नवीनता' का वर्णन करना आवश्यक है क्योंकि गतिविधियों, जोखिम, लागत और वास्तव में उत्पाद विकास प्रक्रिया नए उत्पाद के

प्रकार के साथ भिन्न होती है। नए उत्पादों के रूप में नए उत्पादों का नाम प्रमुख नवाचारों से उत्पाद में परिवर्तन की विस्तृत श्रृंखला को कवर करने के लिए उपयोग किया जाता है जिससे कम लागत वाले उत्पाद की कीमत कम हो जाती है। किसी उत्पाद की नवीनता का आकलन उन लोगों के अनुसार किया जा सकता है जो इसे समझते हैं। किसी उत्पाद की नवीनता की डिग्री वर्गीकृत करने के कई तरीके हैं। सफल उत्पाद सुनिश्चित करने के लिए निम्नलिखित प्रमुख तत्वों को एक सामान्य परियोजना के साथ निष्पादित करने की आवश्यकता है।

सामरिक योजना का विकासः एक उत्पाद विकास टीम का पालन करने के लिए एक रणनीतिक योजना एक महत्वपूर्ण दस्तावेज होती है। रणनीतिक योजना दृष्टि, मिशन, मूल्य, लक्ष्यों, और संगठन की रणनीति स्थापित करती है।

अंतः विषय टीम बनानाः एक अन्तः विषय टीम में लक्ष्य की ओर काम करने वाले लोगों का समूह होता है और विभिन्न कार्यात्मक विशेषता वाले लोगों से बना होता है।

परियोजना का प्रबंधनः नया उत्पाद विकास एक परियोजना है। यह एक अद्वितीय उत्पाद या सेवा बनाने के लिए एक अस्थायी प्रयास है। एक परियोजना की अवधि इसकी शुरूआत से पूरा होने का समय है। एक परियोजना में तीन तत्व होते हैंः मिशन, उद्देश्यों और बाधाएं।

विकास प्रक्रिया के शुरुआती चरण में आपूर्ति श्रृंखलाः इसमें अपने स्रोत से ग्राहक के सामान की खरीद, परिवहन और भंडारण की प्रक्रिया शामिल है। प्रभावी पैकेजिंग, गोदाम, भौतिक वितरण, परिवहन, सूची स्थान, भविष्यवाणी, उत्पादन योजना, और सूची नियंत्रण सहित कई तरीकों से एक उत्पाद को प्रभावित करती है।

पारंपरिक भारतीय डेयरी उत्पाद

ग्रामीण भारत में अधिशेष दूध को मुख्य रूप से संरक्षण के साधन के रूप में विभिन्न पारंपरिक उत्पादों में परिवर्तित किया जाता है। इन उत्पादों में दही, घी, खोआ, छन्ना, पनीर और विभिन्न मिठाइयां शामिल हैं, जिनमें से कुछ अब संगठित क्षेत्र के दूध संयंत्रों द्वारा भी तेजी से उत्पादित की जा रही हैं। पारंपरिक डेयरी उत्पादों का निर्माण दूध में मूल्य में बृद्धि करता है और यह पर्याप्त रोजगार अवसर भी प्रदान करता है। यह अनुमान लगाया गया है कि भारत में उत्पादित कुल दूध का लगभग 50–55 प्रतिशत पारंपरिक दूध उत्पादों में परिवर्तित हो जाता है।

संगठित डेयरी क्षेत्र ने नये डेयरी उत्पादों के अनुसंधान और विकास में निवेश के संदर्भ में काफी कम कार्य किया है। भारतीय डेयरी उद्योग के उत्पाद पोर्टफोलियो ने अपने पारंपरिक उत्पाद आधार से शायद ही कोई शुरूआत की है। पिछले कुछ वर्षों में दही, श्रीखंड, गुलाबजमुन और छाछ जैसे पारंपरिक दूध उत्पादों को बढ़ावा देने में कुछ भी प्रयास अपवाद हैं। इन प्रयासों की अपर्याप्तता के परिणामस्वरूप दूध उत्पादन और दूध और दूध उत्पादों की बिक्री के बीच अंतर बढ़ रहा है।

नया उत्पाद विकास के अवसर :

डेयरी उत्पादों जैसे, संगठित डेयरी सेक्टर द्वारा निर्मित पनीर, मक्खन, आइसक्रीम, दूध पाउडर इत्यादि वर्तमान में घरेलू और अंतरराष्ट्रीय बाजारों में संतृप्ति स्तर के बहुत करीब पहुंच रहे हैं। भारतीय संदर्भ में, नए उत्पादों, विशेष रूप से पारंपरिक भारतीय डेयरी उत्पादों के विकास के संबंध में उत्तेजनात्मक अवसर पैदा हुए हैं। पारंपरिक डेयरी उत्पादों की भारत की बाजार क्षमता और वर्तमान विकास दर बेजोड़ है और बड़े पैमाने पर उत्पादन की तकनीक के तहत आगे बढ़ने के लिए तैयार हैं। भारतीय डेयरी उत्पादों ने न केवल आधुनिक डेयरी उद्योग के साथ एक सांस्कृतिक संबंध के रूप में कार्य किया है बल्कि आधुनिक उत्पादक उद्योग को आर्थिक रूप से मजबूत बनाने के लिए विविध उत्पादकों को लाभ पहुंचाने के लिए विविधता प्रदान करने के लिए विविधीकरण, निर्यात संवर्धन और मूल्यवर्धित उत्पादों के लिए तकनीकी आधार भी प्रदान किया है। ढांचा भी इस तथ्य को सामने लाता है कि उत्पादों का अभिनव विकास जटिल कारकों की संख्या से परिपूर्ण है और भारत में डेयरी उद्योग के विशेष संदर्भ के साथ इन कारकों को समझना आवश्यक होगा। पारंपरिक उत्पाद डेयरी उत्पादों पर सही उपभोक्ता संदेश को संवाद करने के लिए उद्योग के स्तर पर एक एकीकृत प्रयासों की भी आवश्यकता है ताकि इस उत्पाद श्रेणी को अन्य खाद्य और पेय पदार्थों के साथ प्रतिस्पर्धा करने में सक्षम बनाया जा सके।

नए उत्पाद विकास में चुनौतियां :

नए उत्पाद परिचय या मौजूदा उत्पादों के व्यावसायीकरण पहलुओं को भारतीय बाजार में पर्याप्त रूप से जोर नहीं दिया गया है। उपभोक्ता के व्यवहार और वरीयताओं को

समझने में महत्वपूर्ण निवेश की आवश्यकता होगी। नए उत्पादों की उपभोक्ता स्वीकृति तुरन्त नहीं होती है, लेकिन इसे गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए निरंतर प्रयास की आवश्यकता होती है जैसे पैकेजों को संभालने में आसान और स्केलिंग की अर्थव्यवस्थाओं को उत्पन्न करने के लिए सभी उपभोक्ता सामर्थ्य बाधाओं को पार करने के लिए सुविधा। स्वास्थ्य और संतुलित आहार के लिए बढ़ता खर्च योग्य आय और उपभोक्ता चेतना के साथ सुविधा और गुणवत्ता की आवश्यकता बढ़ेगी। हालांकि, छोटे शहरों, कस्बों और ग्रामीण क्षेत्रों में भारतीय उपभोक्ताओं के एक बड़े वर्ग के लिए खपत को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक शेष रहेगा। लक्षित बाजार की इन बाधाओं/ आवश्यकताओं के लिए डेयरी उद्योग को गुणवत्ता नियंत्रण, अभिनव पैकेजिंग और लागत प्रबंधन के क्षेत्रों में उपयुक्त चीजों के माध्यम से प्रतिक्रिया देना होगा ताकि वे अपने लक्षित बाजारों को मूल्यवान रख सकें।

पारंपरिक उत्पादों के लिए नया व्यापार मॉडल

पारंपरिक दूध उत्पादों के लिए आपूर्ति श्रृंखला का एक अभिन्न हिस्सा बनने के लिए संगठित डेयरी क्षेत्र को एकीकृत करने के लिए दो प्रमुख हस्तक्षेपों की आवश्यकता है। सबसे पहले, संगठित डेयरी क्षेत्र उपभोक्ताओं की क्षेत्रीय प्राथमिकताओं के अनुसार जातीय उत्पादों की विविधता में रूपांतरण के लिए असंगठित क्षेत्र को आपूर्ति करने के लिए बड़े पैमाने पर मध्यवर्ती उत्पादों का निर्माण। दूसरा, आपूर्ति श्रृंखला के इस तरह के पुनर्गठन के लिए बड़े पैमाने पर निर्माण के लिए प्रौद्योगिकी शुरू करने की आवश्यकता। जो भविष्य में पारंपरिक उत्पादों की मांग को बढ़ाने और उनके गुणवत्ता मानकों को बढ़ाने के लिए एक व्यापार मॉडल के रूप में स्थापित होगा।

परंपरागत भारतीय डेयरी उत्पादों के निर्माण में बने नए आयाम :

परंपरागत स्वदेशी दूध उत्पादों का बाजार तेजी से बढ़ रहा है और हमारी भविष्य की सफलता नए उत्पादों को विकसित करने की हमारी क्षमता पर निर्भर करेगी, जो उपभोक्ता चाहते हैं और जरूरत भी है। जो उपभोक्ता को नवाचार–उत्पाद, प्रसंस्करण विधि या पैकेजिंग की वास्तविक आवश्यकता को पूरी करनी चाहिए। हम जानते हैं कि आज के परिवार पोषण और स्वास्थ्य के बारे में भी चिंतित हैं तथा विभिन्न आयु और जनसांख्यिकीय अलग–अलग चीजें चाहते हैं। इसलिए, इस स्तर पर निवेश एवं शोध आवश्यक है तथा कोई भी संस्था निम्नलिखित तरीके अपनाकर प्रतिस्पर्धी कीमतों पर पारंपरिक पारंपरिक डेयरी उत्पादों का निर्माण कर सकती है :

- पारंपरिक डेयरी उत्पादों के निर्माण की मशीनीकरण
- पारंपरिक डेयरी उत्पादों के निर्माण में नई तकनीकों का उपयोग
- पारंपरिक डेयरी उत्पादों के संरक्षण में विकास
- पैकेजिंग में विकास

निष्कर्ष

अलग–अलग कार्यात्मक गतिविधि के रूप में अलगाव से उत्पाद विकास नहीं होता है। यह एक संस्था के दर्शन, मूल रणनीति और एक बहुआयामी गतिविधि है। हाल के वर्षों में इस सर्वव्यापी आधार को दिखाने के लिए, उत्पाद, प्रक्रिया, विपणन और संगठनात्मक नवाचारों को एक साथ लाकर, समग्र नवाचार रणनीति का विकास हुआ है। यह नवाचार रणनीति संस्था के समग्र व्यापारिक उद्देश्यों और रणनीति के साथ ही सामाजिक, आर्थिक और तकनीकी वातावरण और अपने ज्ञान तथा कौशल के द्वारा नए आयाम स्थापित कर सकती है।

930-000-0857

whatsapp

लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर

जैविक दूध उत्पादन

सीताराम गुप्ता, मनोहर लाल सैन एवं राजेन्द्र यादव

राजस्थान पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)

रासायनिक उर्वरक, कृषि रसायन, बेहतर फीड, एन्टीबायोटीक्स एवं दवाओं के उपयोग से कृषि खाद्यायान्न उत्पादन और पशुओं से प्राप्त होने वाले खाद्य उत्पादों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। लेकिन आजकल उपभोक्ता जागरूक बन गये है। और उत्पाद की गुणवत्ता के साथ–साथ पर्यावरणीय रूप से सुरक्षित, रासायनिक अवशेष मुक्त स्वस्थ खाद्य पदार्थों की मांग करना और पशु कल्याण का एक उच्च मानक, जो कि जैविक विधियों से ही सुनिश्चित हो सकता है। वैज्ञानिक भाषा में जैविक उत्पाद ऐसे उत्पादों के लिए प्रयोग में लाया जाता है जो कि धरती पर प्राकृतिक रूप से पैदा होते है तथा जिनके उत्पादन के दौरान किसी भी प्रकार के मनुष्य जनित रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक एवं अन्य किसी भी प्रकार के हानिकारक पदार्थो का प्रयोग नहीं किया जाता है। जिन उत्पादों में विकरण एवं अनुवांशिक रूप से रूपान्तरित जीवों का प्रयोग किया जाता है, वो भी जैविक उत्पाद की श्रेणी में नहीं आते हैं। इसी तरह जैविक दूध उत्पादन ऐसे दूध एवं दूध से बने हुए पदार्थों को कहा जाता है जो कि प्राकृतिक रूप से जैविक डेयरी पद्धति से पाले हुए दुधारू पशुओं से प्राप्त होता है। जैविक कृषि आन्दोलन सर्वप्रथम 1940 के दशक में इंग्लैंड में सर अल्बर्ट हॉवर्ड के लेखन से शुरू हुआ था, जिन्होनें 1920 के दशक के दौरान भारत में जैविक प्रथाओं के बारे में सीखा था। जैविक दूध उत्पादन भारत जैसे विकासशील देशों में उत्पादकों के लिए न केवल एक चुनौती है बल्कि यह निर्यात एवं आमदनी का नया अवसर भी प्रदान करता है। जैविक दूध उत्पादन ज्ञान और प्रबन्धन केन्द्रित है तथा इसके लिए पशुपालकों को जैविक उत्पादन से अच्छी तरह से अवगत के साथ–साथ उत्पादन मानकों, सिद्धान्तों, प्रथाओं एवं उच्च स्तर के ज्ञान और कौशल की आवश्यकता होती है जैविक पशुपालन में दूध केवल अन्तिम उत्पाद नहीं है, बल्कि पूरी उत्पादन प्रकिया का निरीक्षण किया जाना चाहिए और मान्यता प्राप्त प्रमाणीकरण निकायों द्वारा अनुमोदित किया जाना आवश्यक है। जैविक पशुधन

खेती अभी भी विकसित हो रही है और इसे टिकाऊ बनानें के लिए सतत् चलने वाले अनुसंधान आवश्यक है।

भारत में जैविक प्रमाणीकरण तंत्र

भारत सरकार के वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय के अन्तर्गत "राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम" के अधीन जैविक प्रमाणीकरण तंत्र कार्य कर रहा है। यह जैविक प्रमाणीकरण तंत्र, कृषि प्रसंस्करण उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण (एपीडा) के द्वारा संचालित होता है। इस प्राधिकरण के द्वारा राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम के अन्तर्गत, कई प्रमाणीकरण संस्थाओं को अधिकृत किया जा चुका है, जो कि पूरे देश में जैविक खेती तथा पशुपालन का प्रमाणीकरण करती है।

जैविक दुग्ध उत्पादन के लिए जैविक उत्पादन के राष्ट्रीय मानकों को पूरा करना आवश्यक है तथा राष्ट्रीय जैविक उत्पादन निकाय के द्वारा पंजीकृत होना जरूरी है। जैविक प्रमाणीकरण दूध उत्पादन के लिए निम्नलिखित राष्ट्रीय मानकों को पूरा करना आवश्यक है।

1. **डेयरी फार्म रूपान्तरण अवधिः–**

- जैविक पशु पालन व जैविक कृषि प्रबन्धन प्रारम्भ करने के समय से लेकर वास्तविक जैविक उत्पादन प्रारम्भ करने के बीच की अवधि को रूपान्तरण अथवा बदलाव अवधि कहते है।
- रूपान्तरण अवधि में पूरे फार्म को उसके पशुधन सहित राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम के मानकों

के अनुरूप ढाल देना चाहिए। यदि रूपान्तरण अवधि में पूरे फार्म का बदलाव सम्भव न हो तो दोनों भागों को अलग अलग रखना चाहिए तथा चरणबद्ध तरीके से पूरे फार्म को जैविक फार्म के रूप में विकसित करना चाहिए।

- जैविक खेती के लिए कम से कम दो साल की रूपान्तरण अवधि की आवश्यकता होती है।
- परम्परागत खेती का पूर्णतया जैविक खेती में रूपान्तरण के पश्चात् ही जैविक दूध उत्पादन किया जा सकता है।
- जैविक दूध उत्पादन के लिए पशु का पालन पोषण और प्रबन्धन जैविक खेती पर दूध उत्पादन की विधि से कम से कम एक साल पहले से शुरू किया जाना चाहिए।

2. **पशुओं में खाद्य पदार्थ प्रबन्धनः–**

- पशुओं के लिए उपयोग में लाये जाने वाले खाद्य पदार्थ जैविक कृषि से उत्पादित अथवा जैविक खेती के राष्ट्रीय मानकों को पूरा करने वाले होने चाहिए तथा इनका प्रयोग रूपान्तरण अवधि के प्रारम्भ से ही करना चाहिए।
- 70 प्रतिशत खाद्य पदार्थ जैविक कृषि से उत्पादित तथा 30 प्रतिशत खाद्य पदार्थ रूपान्तरण अवधि के जैविक खेती से प्राप्त किया जा सकता है। सूक्ष्म खनिज लवणों की कमी की पूर्ति के लिए खनिज लवणों अथवा संश्लेषित विटामिन को मिलाने की अनुमति राष्ट्रीय मानक संस्थान से ली जा सकती है। खाद्य पदार्थ के रूप में यदि गुड़ का उपयोग करना है तो यह भी जैविक उत्पादित होना चाहिए।

3. **मृदा प्रजननः–** मृदा उर्वरकता बनाये रखने अथवा बढ़ाने के लिए रासायनिक उर्वरकों का उपयोग नहीं करना चाहिए तथा इसके फसलों को फसल चक्र के रूप में उगाना चाहिए और जैविक पशुओं से प्राप्त गोबर की खाद का ही उपयोग करना चाहिए।

4. **पशुओं के लिए आवास प्रबन्धनः–**

- पशुओं को प्राकृतिक अवस्था में रखना चाहिए। पशुओं के मुक्त विचरण व सामान्य व्यवहार को प्रकट करने के लिए पर्याप्त स्थान होना चाहिए।
- पशुओं को विशेष परिस्थितियों जैसे दूध निकालते समय या दवाई देते समय ही बांधना चाहिए।
- पशुओं को उनके सामान्य व्यवहार के आधार पर ही रखना चाहिए एवं समूह व्यवहार वाले पशुओं को समूह में ही रखना चाहिए।
- पशुशाला में वायुसंचार, तापमान बनाये रखने की पद्धति तथा प्रकाश व्यवस्था इस प्रकार से हो जिससे पशुशाला में हवा का संचारण, तापमान, सापेक्षित आद्रता तय सीमा में रहें।
- पशुशाला में पर्याप्त प्राकृतिक हवा व रोशनी के प्रवेश की व्यवस्था होनी चाहिए।

5. **पशु नस्ल एवं प्रजननः–** पशु नस्ल के चयन में यह सावधानी रखनी चाहिए कि पशु नस्ल उस क्षेत्र के वातावरण के अनुकूलित हो ताकि पशु कम से बीमार पड़े और उनका प्रबन्धन भी आसानी से किया जा सके। जैविक डेयरी फार्म में प्रजनन के लिए प्राकृतिक प्रजनन की विधियों को ही अपनाना चाहिए। जैविक डेयरी फार्म पर कृत्रिम गर्भाधान करवाने की अनुमति होती है परन्तु भ्रूण प्रत्यारोपण की अनुमति नहीं होती है।

6. **पशु स्वास्थ्य**

- जैविक पशुपालन में पशुकल्याण ही सर्वोपरि है अतः जैविक जैविक डेयरी फार्म पर पशु की बीमारी, दर्द तथा पीड़ा का इलाज तुरन्त करवाना चाहिए। उत्पादक को पशु का इलाज इस वजह से नहीं रोकना चाहिए कि इलाज से पशु की जैविक उत्पादकता समाप्त हो जायेगी।
- जैविक पशु फार्म पर रोगी, चोटिल तथा उपनैदानिक रोगों की जाँच का तंत्र स्थापित करना चाहिए, ताकि रोग का पता लगने पर तुरन्त इलाज प्रारम्भ किया जा सके। यदि रोग का उपचार वैकल्पिक स्वीकार्य उपचार या प्रबंधन विधि से किया जा सके तो ऐलोपेथी औषधियाँ अथवा प्रतिजैविक औषधियों का उपयोग नहीं करना चाहिए। वैकल्पिक स्वीकार्य उपचार हर्बल, होम्योपैथिक अथवा आयुर्वेदिक औषधियों द्वारा संभव नहीं हो तो ही ऐलोपैथिक औषधियां तथा प्रतिजैविक औषधियां का उपयोग जैविक पशुपालन के राष्ट्रीय मानकों के आधार कर ही करवाना चाहिए।
- जैविक पशुपालन में आवश्यक टीकारण, कुछ पशु

परजीवी नाशक औषधियों के उपयोग की अनुमति है।

- यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि यदि कोई जैविक पशु का एक साल में तीन या उससे अधिक बार उपचार किया गया हो तो पशु अपनी जैविक अवस्था को खो देता है।
- जैविक डेयरी फार्म पर बछड़ो को जैविक दूध ही पिलाना चाहिए, संश्लेषित दूध पिलाने की अनुमति नहीं है।
- पशु की जैविक उत्पादकता को बढ़ाने के लिए और पशु की प्रजनन अवस्था को बढ़ाने के लिए ऐलोपैथिक पशु औषधियों तथा हार्मोनों का उपयोग नहीं करना चाहिए।

7. जैविक पशुओं की उपलब्धता

जैविक पशु किसी भी प्रमाणित जैविक फार्म से प्राप्त कर सकते है परन्तु जैविक फार्म से खरीदने से पहले यह पता करना आवश्यक है कि पिछले छः सालों में कोई भी पशु स्पोनजीफार्म एनसीफलाईटिस नामक बीमारी से पीड़ित नहीं हुआ हो। यदि फार्म अभी रूपान्तरण अवधि में हो तो पहले से ही फार्म पर उपस्थित पशुओं को रखा जा सकता है और उनका दूध जैविक दूध के रूप में रूपान्तरण अवधि के बाद बेचा जा सकता है।

जैविक दूध की उपयोगिता

- कार्बनिक दूध में आवश्यक ओमेगा–3 वसीय अम्ल की मात्रा कम उपयोगी ओमेगा–6 वसीय अम्ल की तुलना में अधिक होती है। ओमेगा–3 वसीय अम्ल स्वस्थ वृद्धि के लिए आवश्यक होती है तथा हाल ही के वर्षो में इसकी कमी से होने वाले दुष्प्रभावों का अध्ययन वैज्ञानिकों द्वारा किया गया है।
- ओमेगा–3 वसीय अम्ल के लगातार उपयोग से मानव अपने आप को तथा अपने परिवार को बहुत से रोगों से बचा सकता है। इसके लगातार उपयोग से हृदय रोगों, लकवा की बीमारियों, कैंसर तथा जोड़ों के दर्द आदि रोगों से भी बचा जा सकता है।
- जैविक दूध में संयुक्त लिनोलिनिक अम्ल की मात्रा सामान्य परम्परागत दूध से अधिक होती है। यह संयुक्त लिनोमिनिक अम्ल शरीर की उपापच्य दर को बढ़ा कर शरीर से वसा एवं कोलेस्ट्रोल की मात्रा कम करता है तथा माँसपेंशियों में वृद्धि करता है। इसके साथ–साथ यह अम्ल शरीर की रोग–प्रतिरोधक क्षमता को भी बढ़ाता है।
- जैविक दूध उत्पादन के लिए पशु की चराई ऐसी चारागाह में कराई जाती है जहाँ पर किसी फर्टिलाइजर का उपयोग नहीं किया गया हो। ऐसे पशु में दूध की मात्रा बढ़ाने के लिए भी किसी प्रकार के प्रतिजैविक औषधियां और हार्मोन का उपयोग नहीं किया जाता है ऐसे पशु से प्राप्त दूध में किसी भी प्रकार के हानिकारक रसायनिक पदार्थों (कीटनाशक, उर्वरक, हार्मोन तथा प्रतिजैविक औषधियों) के अवशेष भी नहीं होते है। इसलिए इनके अवशेषों (कीटनाशक, उर्वरक, हार्मोन तथा प्रतिजैविक) का शरीर पर कुप्रभाव नहीं पड़ता है।
- जैविक दूध में ल्युटिन तथा जैन्थीन नामक एन्टी–ऑक्सीडेंट पदार्थ पाये जाते है। जैविक दूध में एन्टीऑक्सीडेंट पदार्थ, सामान्य दूध से 2 से 3 गुणा अधिक पाये जाते है।
- ल्युटिन तथा जैन्थीन दोनो एन्टीऑक्सीडेंट आंखों को स्वस्थ रखने के लिए आवश्यक होते है तथा आंखों को पराबैंगनी किरणों से बचाते है तथा आंखों की बीमारियां जैसे मोतियाबिन्द, कालापानी, डाएविटिज रेटिनोपेथी से भी बचाता है।
- जैविक दूध में विटामिन–ए (कैरोटीनॉइड) तथा विटामिन–ई की मात्रा सामान्य दूध से अधिक होती है और कैरोटीनाइड तथा विटामिन–ई शरीर में एन्टी ऑक्सीडेन्ट की तरह काम कर शरीर की रोगों से लड़ने की क्षमता बढाते हैं।

जैविक डेयरी के विकास में बाधाएंः

जैविक पशु पालन की कुछ महत्वपूर्ण बाधाएं निम्न प्रकार हैंः–

1. ज्ञान और जागरूकता की कमी।
2. जैविक उत्पदन के लिए काम में आने वाले जैविक पशु आहार की सीमित उपलब्धता।
3. उचित रिकार्ड संधारण की समस्या।
4. उचित खरीद, प्रसंस्करण, विपणन तथा बुनियादी ढांचे की कमी।
5. प्रमाणीकरण तंत्र की जटिल प्रक्रिया तथा सीमित पहुँच।

वाणिज्यिक मछली पालनः किसानों के लिए रोजगार का बेहतर अवसर

प्रीती सिंह[1], जितेन्द्र यादव[2] एवं अभिनव चौधरी[1]

[1]पशु भैषज्य विज्ञान एवं विषज्ञान विभाग

[2]अनुसंधान सहायक, राष्ट्रीय प्रतिरक्षा विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली

मछली पालन भारत में खाद्य उत्पादन का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। मछली लगभग 60% भारतीयों की पंसदीदा खाद्य वस्तुओं में से एक हैं और इसी वजह से मछली और मछली उत्पाद की बाजार मांग बहुत अधिक है। इसलिए भारत में वाणिज्यिक मछली पालन की दर भी तेजी से बढ़ रही है। मछली का मुख्य और प्रमुख स्त्रोत समुद्र और नदी है, लेकिन इन प्राकृतिक स्त्रोतों से मछली का उच्च मात्रा में संग्रह कर लिया जाता है, जिसके कारण मछली की मात्रा धीरे–धीरे घट रही है। इसलिए लोगों की मांग को पूरा करने के लिए, एक वाणिज्यिक मछली पालन व्यवसाय स्थापित करना एक वरदान से कम नहीं है। जैसा कि हम जानते हैं कि भारत में बड़ी संख्या में नदियाँ, झील और कई प्राकृतिक जलमार्ग हैं, इसलिए भारत में वाणिज्यिक मछली पालन, नया आय स्त्रोत स्थापित करने के लिए बहुत अच्छा है।

मछली पालन के लाभः वाणिज्यिक मछली पालन की स्थापना के कई फायदे है। भारत में वाणिज्यिक मछली पालन व्यवसाय स्थापित करने के मुख्य फायदे इस प्रकार हैंः–

1. मछली और मछली उत्पाद 60% से अधिक भारतीय लोगों की खाद्य सूची में सबसे आम और पंसदीदा आइटम में से एक हैं, इसलिए भारत में इसकी भारी मांग हैं।
2. बाजार की मांग और कीमत, मछली और मछली से संबंधित उत्पादों के लिए हमेशा उच्च होती है।
3. मछली उत्पादन और मछली पालन व्यवसाय के लिए भारत का वातावरण बहुत उपयुक्त है।
4. भारत में विभिन्न प्रकार के आसानी से पाए गए जल स्त्रोत उपलब्ध हैं, ताकि कोई भी अपने तालाब को, अपनी नजदीक नदी, झील या किसी अन्य जल स्त्रोत से पानी भर सके और मछली पालन कर सके।
5. भारत में कई प्रकार की तेजी से बढ़ती मछली प्रजातियां उपलब्ध हैं। उन तेजी से बढ़ती मछली प्रजातियों की खेती, निवेश का तेजी से वापसी सुनिश्चित करती हैं।
6. भारत में कम लागत में श्रम आसानी से उपलब्ध हैं। कोई भी विभिन्न प्रकार के जानवरों, पक्षियों, फसलों और सब्जियों के साथ एकीकृत मछली पालन व्यवसाय शुरू कर सकता है। एकीकृत मछली पालन लागत को कम कर देता है और अधिकतम उत्पादन सुनिश्चित करता है।
7. भारत में मछली पालन वास्तव में बहुत लाभदायक है और कम जोखिम वाला व्यवसाय है। वाणिज्यिक मछली पालन नई आय और रोजगार के अवसर पैदा कर सकता है। बेरोजगार शिक्षित युवा लोग मछली पालन का व्यवसाय शुरू कर सकते हैं। यह उन्हें वित्तीय स्वतंत्रता और स्थायी आय, दोनों के अवसर प्रदान करेगा।
8. यदि लोग अन्य व्यवसाय या नौकरी के साथ संलग्न हैं, तब भी वे मछली पालन का व्यवसाय शुरू कर सकते हैं। यदि उनके पास मछली पालन के लिए उपयुक्त भूमि और सुविधाएं हैं तो भी वे आसानी से इस व्यवसाय को शुरू कर सकते हैं।
9. यदि कोई व्यक्ति बैंक से ऋण लेना चाहता है, तो वे इसके लिए आवेदन कर सकता है।

मछली पालन की व्यवस्थाः

लाभदायक मछली पालन व्यवसाय की स्थापना के लिए किसानों को कुछ प्रक्रियाओं के माध्यम से जाना होगा।

1. **तालाब की तैयारीः** किसी भी वाणिज्यिक मछली पालन के लिए तालाब की तैयारी आवश्यक है और तालाब के बिना कोई मछली पालन शुरू नहीं कर सकता है। किसान मछली पालन के लिए या तो मौजूदा तालाब का उपयोग कर सकते हैं या फिर एक नये तालाब का निर्माण कर सकते है। मौसमी और स्थायी दोनों प्रकार के तालाबों

का उपयोग मछली पालन के लिए किया जा सकता है। मौसमी तालाब में मछली पालन के मामले में पूरे वर्ष के लिए पानी मौजूद नहीं होगा, इसलिये कुछ तेजी से बढ़ती और त्वरित परिपक्व मछली नस्लों का पालन तालाब में करना होगा। तालाब को ठीक से मछली के बीज भंडारित करने के लिए साफ करें और उसके बाद इसे उर्वरित करें। तालाब और मिट्टी के इष्टतम पीएच मान होना चाहिए। मछली का उच्च उत्पादन और लाभ, उच्च गुणवत्ता वाले तालाब के पर्यावरण से संबंधित है।

2. **मछली प्रजातियों का चयनः** कुल मिलाकर मछली पालन का उत्पादन और लाभ, उपयुक्त मछली नस्ल के चयन पर भी आधारित है। हमेशा अपने क्षेत्र के लिए उपयुक्त मछली नस्लों का चयन करने की कोशिश करें। मछली नस्लों का चयन करते समय मछली की बाजार मांग, मछली पालन के लिए प्राकृतिक सुविधाएं, पर्याप्त मात्रा में पानी का बड़ा स्त्रोत, संसाधनों का प्रभावी उपयोग और कुछ अन्य कारकों पर विचार करें। कटला, रूई, घास कार्प, सिल्वर कार्प, कॉमन कार्प, टिलपिया, कोई, झींगा, विभिन्न प्रकार के कैटफिश इत्यादि ताजे पानी के तालाब में खेती के लिए बहुत उपयुक्त मछली नस्लें हैं। तालाब और जल संसाधनों के उचित उपयोग के लिए कई मछली नस्लों को एक साथ बढ़ा सकते हैं और निकटतम मछली खेतों या मत्स्यपालन विभाग से अधिक गुणवत्ता वाले मछली के बीज भी प्राप्त कर सकते हैं। कार्प भारत में ताजे पानी में खेती की जाने वाली सबसे महत्वपूर्ण प्रजाति है, जो उत्पादन के बड़े हिस्से में योगदान देती है। तीन भारतीय प्रमुख कार्प्स, अर्थात्, कटला (कटला कटला), रोहू लैबियो (लैबियो रोहिता) और मृगल कार्प (सिरिहिन्स मृगला) कुल भारतीय जलीय कृषि उत्पादन का 90% योगदान करते हैं।

3. **मछली के खाद्य पदार्थः** अच्छी और उच्च गुणवत्ता वाले मछली के खाद्य पदार्थ, समग्र मछली उत्पादन को अधिकतम कर सकती हैं। हमारे देश में अधिकांश किसान मछली के लिए तालाब की प्राकृतिक खाद्य पदार्थ पर निर्भर रहते हैं। लेकिन वाणिज्यिक उत्पादन के लिए किसानों को उच्च गुणवत्ता और पौष्टिक युक्त खाद्य पदार्थ मछली को प्रदान करना होगा।

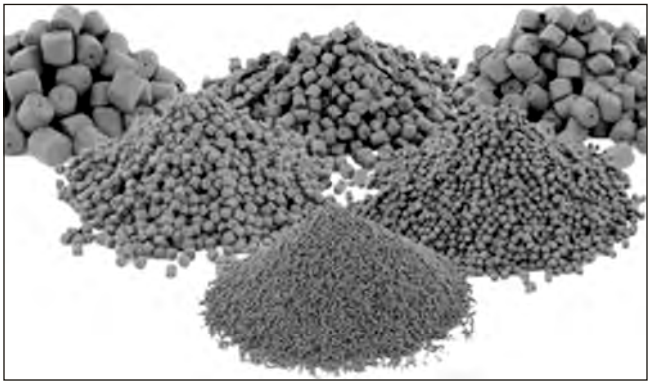

प्राकृतिक खाद्य पदार्थ के साथ मछली को पूरक खाद्य पदार्थ भी प्रदान करें। विभिन्न प्रकार की मछली प्रजातियों के लिए बाजार में विभिन्न प्रकार की तैयार वाणिज्यिक मछली खाद्य पदार्थ उपलब्ध हैं। किसान उन वाणिज्यिक खाद्य पदार्थ को बाजार से खरीद सकते हैं या इसे स्वयं ही तैयार कर सकते हैं। यदि किसान इसे स्वयं तैयार करना चाहता हैं तो पूरक मछली खाद्य पदार्थ तैयार करने के बारे में और जानें। मछली के प्रजातियों के आधार पर, सभी प्रकार के आवश्यक पोषक तत्वों जैसे विटामिन, खनिजों, नमक इत्यादि को खाद्य पदार्थ में जोड़ना मत भूले। मछली की प्रजाति के आधार पर मछली को दिन भर में कई बार खिलाएं।

4. **मछली प्रबंधनः** हमेशा अपनी मछली को ताजा और पौष्टिक खाद्य पदार्थ प्रदान करने का प्रयास करें। एक उपयुक्त समय के बाद तालाब का पानी बदल दे। यदि तालाब के पानी का बदलना संभव नहीं है, तो एक विशेषज्ञ के सुझाव के अनुसार कुछ रसायनों का उपयोग कर सकते है। नियमित रूप से अपनी मछली के स्वास्थ्य की निगरानी करें। समय पर अपने सभी आवश्यक कृषि कार्यों को करो। तालाब के पर्यावरण का उचित विकास हो इसके लिए इसे स्वच्छ रखें। नियमित रूप से अपने तालाब के पानी और मिट्टी की गुणवत्ता का परीक्षण करें। हमेशा अपने खेत पर कुछ आवश्यक दवाओं का भंडार करें। मेंढक, सांप इत्यादि सभी प्रकार के शिकारियों को तालाब में प्रवेश करने से

रोकें।

5. मछली पकड़ना (हॉर्वेस्टिंग): एक निश्चित अवधि के बाद, मछली पकड़ने के लिए उपयुक्त हो जाती है। हालांकि ये मछली प्रजातियों पर निर्भर करता है कि पकड़ना कब शुरू करें। जब मछली एक बड़ी संख्या में विपणन उम्र तक पहुंच जाती हैं, तब मछली पकड़ना शुरू करें। पकड़ने के लिए नेट का उपयोग कर सकते हैं या तालाब से पानी को हटाकर मछली पकड़ सकते हैं। तापमान कम होने पर, सुबह या दोपहर के दौरान मछली पकड़ने का प्रयास करें। पकड़ने के बाद, जितनी जल्दी हो सके मछली को बेचने के लिए भेजें।

6. विपणन (मार्केटिंग): विपणन मछली पालन व्यवसाय का सबसे आसान कदम है। ऐसे कई बाजार उपलब्ध हैं जहां किसान अपने उत्पादों को बेच सकते हैं और बाजार में सभी प्रकार की मछली की भारी मांग हैं। पकड़ने के बाद, किसान आसानी से अपने किसी भी निकटतम स्थानीय बाजार में मछली बेच सकते हैं। यहां तक की कई कंपनियाँ भी उपलब्ध हैं जो विदेशों में मछली निर्यात करती हैं।

विस्तार शिक्षा की विभिन्न गतिविधियों (ट्रेनिंग आदि) के लिए पशु विज्ञान केन्द्र

क्र.सं.	पशु विज्ञान केन्द्र	वैज्ञानिक का नाम
1.	पशु विज्ञान केन्द्र, फ्रैन्डस कॉलोनी, नजदीक करनाल बाई पास चौक, कैथल	डॉ. रमेश कुमार
2.	पशु विज्ञान केन्द्र, वैटेनरी पोली क्लीनिक, सोनीपत	डॉ. इन्द्रजीत सिंह
3.	पशु विज्ञान केन्द्र, पांडु पिंडारा, जींद	डॉ. रमेश कुमार
4.	पशु विज्ञान केन्द्र, सिरसा	डॉ. बी.एस. श्योकन्द
5.	पशु विज्ञान केन्द्र, भिवानी	डॉ. धर्मवीर सिंह दहिया
6.	पशु विज्ञान केन्द्र, रोहतक	डॉ. राजेन्द्र सिंह
7.	पशु विज्ञान केन्द्र, युगल विहार (दाहलीवास) रेवाड़ी	डॉ. अभय सिंह यादव
8.	पशु विज्ञान केन्द्र, नजदीक मिनी सैक्ट्रेट, गुड़गांव	डॉ. कृष्ण कुमार यादव
9.	विस्तार शिक्षा निदेशालय, लुवास, हिसार	डॉ. सज्जन सिंह एवं डॉ. देवेन्द्र सिंह
10.	पशु विज्ञान केन्द्र, अम्बाला	–

पशुओं में लहू मूतना रोग

राजेन्द्र यादव[2], विनय कुमार[1] एवं पंकज कुमार[3]

[1]पशु–चिकित्सक, पशुपालन विभाग, हरियाणा

[2]क्षेत्रीय पशु चिकित्सा, रोग निदान एवं विस्तार केन्द्र, महेन्द्रगढ़, [3]पशु रोग जांच प्रयोगशाला, रोहतक

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

यह रोग क्या है?

लहू मुतना रोग पशुओं में पाया जाने वाला एक असंक्रामक रोग है। इस राग में प्रभावित पशु के पेशाब का रंग पेशाब में खुन/रक्त/लहू आने के कारण लाल हो जाता है। यह रोग गाय एवं भैंस प्रजाति के पशुओं में प्रायः पाया जाता है, तथा गाय की बजाय भैंस में यह रोग अधिक देखा गया है। पशुओं में लहू मुतना रोग 3 से 6 ब्यांत की अवधि के दौरान तथा अत्यधिक दूध देने वाले पशुओं में ज्यादा पाया जाता है। यह रोग पशु के ब्यानें केबाद 2 से 4 सप्ताह की अवधि के दौरान अधिक देखा गया है। कई परिस्थितियों में यह रोग पशुओं में गर्भावस्था की अन्तिम अवस्था में भी पाया जाता है। मुख्य रूप से यह रोग पशुओं में एक चयापचय में गड़बड़ी की वजह से उत्पन्न होता है। पशुओं में यह समस्या उन क्षेत्रों में ज्यादा पाई जाती है, जहाँ की मिट्टी में फॉस्फोरस नामक तत्व की कमी होती है। हमारे देश में खासकर भैंस में यह रोग एक स्थानिक समस्या के रूप में प्रचलित है। अंग्रेजी भाषा में इस रोग को पोस्ट पारचुरियंट हिमोग्लोबिनयुरिया (पी॰पी॰एच॰) के नाम से जाना जाता है।

यह रोग होता कैसे है?

पशुओं में लहू मुतना रोग फॉस्फोरस तत्व की कमी से होने वाला रोग है, जो कि प्रभावित पशुओं में लाल रक्त कोशिकाओं के नष्ट होने की वजह से पेशाब में खुन आने (लहू मुतना) तथा रक्ताल्पता (अनीमीया) के रूप में परिलक्षित होता है। ऐसे पशु जिनकी दूध उत्पादन की क्षमता ज्यादा होती हैं परन्तु असंतुलित आहार खासकर आहार में फॉस्फोरस तत्व की कमी (केवल सुखा चारा खिलाना) होती है, उनमें यह रोग होने की संभावना ज्यादा होती है। पशु आहार में फुल गोभी, पत्ता गोभी, शलजम तथा राई घास की अधिकता भी पशुओं को इस रोग के प्रति संवेदनशील बनाती है। जिन पौधों में ऑक्जलेट्स की मात्रा अधिक पाई जाती है, ऐसे पौधों को चारे के रूप में पशुओं को खिलाने की वजह से भी इस रोग के होने की संभावना बढ़ जाती है। पशुओं को नियमीत रूप से खनिज मिश्रण नहीं खिलाने की वजह से भी इस रोग के होने की संभावना ज्यादा रहती है।

इस रोग के लक्षण क्या–क्या होते हैं?

पशुओं में इस रोग का मुख्य लक्षण लाल पेशाब आना है, इसलिए इसको लहू मुतना रोग कहा जाता है। भूख की कमी, कमजोरी एवं दूध उत्पादन में कमी देखने को मिलती है। पेशाब के साथ खुन आने की वजह से पशु के शरीर में रक्त की कमी एवं श्लेष्मिक झिल्लियों का सफेद या पीलापन दिखाई देता है। पेशाब का रंग गहरा भूरा (कॉफी के जैसा) देखने को मिलता है। शरीर में पानी की कमी होने की वजह सेगोबर सुखा एवं कठोर हो जाता है। शरीर में खुन की कमी की वजह से ह्रदय गति बढ़ जाती है तथा रक्त की कमी (अनीमिया) एवं पीलीया के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। पशु जुगाली करना भी बन्द कर देता है। अनीमिया की वजह से पशु को सांस लेने में भी दिक्कत होने लगती है, पशु की सांस लने की गति भी बढ़ जाती है तथा समय पर उचित ईलाज के अभाव में पशु की मौत भी हो सकती है।

इस रोग की पहचान कैसे करें?

गाय एवं भैंस प्रजाति के पशुओं में लाल पेशाब आना कई प्रकार की बिमारियों में देखने को मिलता है। यदि कोई पशु गर्भावस्था की अंतिम अवस्था में हो या पशु अभी 2 से 4 सप्ताह की अवधि में ही ब्याया हो एवं पशु को बुखार नहीं हो तथा पशु के पेशाब का रंग गहरा भूरा (कॉफी के रंग जैसा हो) हो, ऐसी परिस्थिति में इस बात की संभावना ज्यादा हो जाती है कि पशु फॉस्फोरस नामक तत्व की कमी से होने वाले लहू मुतना रोग से ग्रसित है। पशुपालकों को चाहिए की ऐसी स्थिति में तुरंत अपने पशु–चिकित्सक से संपर्क करें एवं पशु के रोग का उचित तरीके से पता लगवाएं। इस

रोग के निदान के लिए पशु एक पेशाब एवं खुन की प्रयोगशाला में जाँच करवाकर भी इस रोग का पता लगाया जा सकता है।

इस रोग का उपचार क्या है?

पशु–चिकित्सकों द्वारा इस रोग के उपचार के लिए प्रभावित पशु को सोडियम ऐसिड फॉस्फेट रक्त मार्ग (नस में) तथा त्वचा के नीचे एवं मुँह द्वारा दिया जाता है। इस दवाई की मात्रा एवं उपचार का समय पशु–चिकित्सक प्रभावित पशु की अवस्था देखकर तय करते हैं। पशु चारे के साथ हड्डियों का चूरा या डाइकैल्शियम फॉस्फेट भी इस रोग में लाभकारी सिद्ध होता है। पशु के शरीर में रक्त बढ़ाने के लिए कॉपर, लोहा तथा कोबाल्ट सम्मिश्रित टॉनिक भी लाभकारी साबित होते हैं। पशु की भुख बढ़ाने के लिए इस रोग में लिवर टॉनिक एवं अन्य औषधियाँ भी दी जाती है। अतः पशुपालकों को चाहिए कि इस रोग से प्रभावित पशु का पशु–चिकित्सक के द्वारा पूरा एवं उचित ईलाज करवाएं।

इस रोग से बचाव कैसे करें?

वैज्ञानिक तौर पर पशु चारे में फॉस्फोरस तत्व की मात्रा कम से कम 0.25 प्रतिशत होनी चाहिए। अगर इससे कम मात्रा है तो पशुओं को नियमित तौर पर डाईकैल्शियम फॉस्फेद देना चाहिए। एक व्यस्क पशु को रोजाना 20 ग्राम फॉस्फोरस पशु चारे में मिलना चाहिए तथा दुधारू पशु को इसके अतिरिक्त रोजाना 0.8 ग्राम अतिरिक्त प्रति 500 ग्राम दूध उत्पादन पर दी जानी चाहिए। पशुपालकों को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि पशु चारे में फुल गोभी, पत्ता गोभी, शलजम तथा राई घास की अधिकता ना हो, अन्यथा यह रोग होने की संभावना बढ़ जाती है। इस रोग की रोकथाम के लिए ऐसे क्षेत्र जहाँ की मिट्टी में फॉस्फोरस तत्व की कमी हो में पशुओं को पूरक आहार के रूप में खनिज मिश्रण संतुलित आहार के साथ नियमित रूप से देना चाहिए।

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

प्रमुख गतिविधियाँ

1. पशुपालक प्रशिक्षण कार्यक्रम
2. पशुपालक कॉल सेन्टर (930-000-0857)
3. निःशुल्क SMS सेवा
4. पशु पालन सम्बंधी पाठ्य सामग्री
   (पशुधन ज्ञान, डेयरी फ़ार्मिंग मार्गदर्शिका, कैसे करें पशुपालन, मुर्गीपालन मार्गदर्शिका इत्यादि)

रेबीज से सम्बंधित महत्वपूर्ण जानकारी व बचाव के उपाय

वी.के. जैन, दिव्या अग्निहोत्री एवं तरुन कुमार

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

रेबीज एक विषाणु जनित जानलेवा रोग है। ये रोग मुख्य रूप से कुत्ते के काटने से फैलता है। इसके अतिरिक्त बन्दर बिल्ली, गाय, बकरी, घोड़ा इत्यादि की लार से संपर्क से आने से अथवा काटे जाने से यह रोग फैल सकता है। कुत्ते व बिल्ली में स्वयं को चाटने की आदत होती है, अतः उनके पंजे से खरोंच लगने पर भी रेबीज का विषाणु शरीर में प्रवेश कर सकता है। यदि हमारे शरीर पर कोई घाव या चोट हो जिस पर रोगी पशु की लार गिर जाए तो भी यह रोग मनुष्य में अथवा अन्य किसी जानवर में फैल सकता है। आँख, कान, मुँह पर दूषित लार गिरने से भी यह रोग फैल सकता है।

विश्व भर में रेबीज से मरने वालों की संख्या 60000 प्रति वर्ष है। रेबीज का टीकाकरण करवाने से ही बचाव संभव है, परन्तु यह रोग होने के पश्चात् मृत्यु होना निश्चित है।

रेबीज रोग के मुख्य कारण

रेबीज लासा विषाणु के द्वारा होता है ये विषाणु मुख्यता रोगी पशु जैसे कुत्ता, बिल्ली, बन्दर इत्यादि की लार में पाया जाता है।

प्रमुख कारण इस प्रकार हैं :–

1. कुत्ते के काटने से।
2. लोमड़ी, भेड़िया, बन्दर इत्यादि के काटने से।
3. चूहा, गिनहरी आदि द्वारा भी यह रोग फैलता है क्योंकि रेबीज का विषाणु प्राकृतिक रूप से इनके शरीर में पाया जाता है। यदि जंगली जानवर इनका शिकार करते हैं और खा जाते हैं तो ये रोग उनमें फैल जाता है।
4. इस रोग से ग्रस्त गाय, भैंस आदि के मुँह में हाथ डालने से यह रोग फैलता है।

मनुष्य में इस रोग के लक्षण

सिर दर्द, शरीर में दर्द, तेज बुखार, पानी से भय, आँखों में खुजली, गले में हल्की सूजन, लार का टपकना, खाने पीने में तकलीफ होना, आवाज का बदलना, तेज रोशनी, तेज आवाज से भयभीत होना, चिड़चिड़ापन होना, अंतिम अवस्था

में लकवा होना व बेहोश हो जाना। इस रोग से ग्रस्त व्यक्ति की पांच से दस दिन के भीतर मृत्यु हो जाती है।

इलाज/बचाव

1. शरीर के जिस अंग पर कुत्ते आदि जानवर ने काटा है उसे कम से कम पंद्रह मिनट तक साफ पानी व साबुन से धोना चाहिए।
2. घाव धोने के बाद उस पर स्पिरिट, टिन्चर, आयोडिन अथवा बीटाड़िन लगाएं।
3. घाव को खुला छोड़ें उस पर पट्टी बांधें व टाँके ना लगाएं।
4. तुरन्त डॉक्टर से परामर्श लें, देर ना करें।
5. काटे जाने के पश्चात् जल्द से जल्द 0,3,7,14,28 दिन पर पाँच टीके लगवाएं।

रेबीज से ग्रस्त पशु के लक्षण

मुख्य रूप से पशु अथवा कुत्तों में इस रोग की दो अवस्था होती है :–

1. पहली अवस्था में लक्षण तीव्र होते हैं कुत्ता बहुत अधिक उत्तेजित रहता है, अचानक काटने लगता है, काल्पनिक चीजों पर भौंकता है एवं उसे धीरे–धीरे लकवा आ जाता है।
2. दूसरी अवस्था में कुत्ता बहुत शांत हो जाता है। वह अपने मालिक एवं अन्य सदस्यों की पहचान नहीं पाता व उनका कहा नहीं मानता। उसके मुँह से बहुत अधिक लार टपकती है, गले के नीचे सूजन आने से वह भौंक नहीं पाता एवं उसे खाने पीने में मुश्किल

आती है।

आवश्यक जानकारी रखनाः

1. क्या काटने वाला जानवर पालतू था या जंगली था?
2. वह स्वस्थ था या बिमार था?
3. बिमारी के क्या लक्षण थे?
4. काटने वाले जानवर को रेबीज के टीके लगे थे या नहीं? यदि लगे थे तो कब?
5. घाव किस प्रकार का है? एवं शरीर के किस भाग पर घाव है?
6. क्या काटने वाला कुत्ता अथवा जानवर काटने के पश्चात् अगले 21 दिन तक निगरानी के लिए उपलब्ध है? यदि नहीं तो उसे मान कर बचाव के लिए टीकाकरण आरम्भ कर दें।

रेबीज विषय पर ध्यान देने योग्य मुख्य बातेंः

1. रेबीज एक विषाणु से फैलने वाला रोग है जिसका बचाव टीकाकरण द्वारा ही संभव है।
2. मनुष्य में रेबीज से मृत्यु के कारणों में कुत्ते द्वारा काटे जाने प्रमुख है।
3. मनुष्य में होने वाली 99 प्रतिशत रेबीज, कुत्ते के काटने से फैलती है।
4. रेबीज से निदान संभव है केवल निम्न दो बातों का ध्यान आवश्यक है :
   क. कुत्तों में रेबीज के बचाव का टीकाकरण।
   ख. कुत्तों द्वारा काटे जाने से बचाव।
5. एशिया और अफ्रीका में हर साल रेबीज से हजारों मौतें होती हैं।
6. रेबीज से मरने वालों में 40 प्रतिशत बच्चे 15 साल से कम उम्र के होते हैं।
7. काटने के तुरन्त पश्चात् यदि घाव को साफ पानी व साबुन से अच्छी तरह धो लिया जाए तो यह 50 प्रतिशत तक बचाव कर सकता है।
8. रेबीज को केवल होने से पहले रोका जा सकता है परन्तु इसका इलाज संभव नहीं है।
9. पालतू कुत्तों से भी रेबीज हो सकता है, यदि उन्हें रेबीज का टीका नहीं लगवाया गया हो।

पालतू कुत्तों की रेबीज से देखभालः

1. पालतू कुत्तों को ज्यादा देर बाहर ना घूमने दें एवं उन्हें बाहर खाना ना खिलाएं।
2. बचा हुआ भोजन हटा दें ताकि जंगली जानवर अथवा आवारा कुत्ते वहां ना आ सके।
3. यदि जंगली जानवर/आवारा कुत्ते घूमते दिखें अथवा किसी जानवर में रेबीज के लक्षण दिखें तो तुरन्त नगरपालिका को सूचित करें।
4. घर का गेट इस प्रकार बनवाएं की कोई पालतू जानवर बाहर ना भाग सके।
5. बच्चों को आवारा जंगली जानवरों को न छोड़ने की शिक्षा दें।
6. पालतू कुत्तों का रेबीज से बचाव के लिए टीकाकरण करवाएंः
   क. पहला टीका– 3 महीने की उम्र में।
   ख. तत्पश्चात्– पहले टीके के एक वर्ष बाद एक टीका प्रत्येक वर्ष।

ध्यान रखें की सावधानी बरतने से रेबीज से बचाव किया जा सकता है और प्राथमिक उपचार से रोगी को न केवल राहत दी जा सकती है बल्कि उसे बचाया भी जा सकता है। ऐसा करने से अग्रिम उपचार में सहायता मिलती है।

930-000-0857

whatsapp

लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर

भेड़-बकरियों में प्लेग रोग (पी.पी.आर.)

राजेन्द्र यादव[2], विनय कुमार[1] एवं पंकज कुमार[3]

[1]पशु-चिकित्सक, पशुपालन विभाग, हरियाणा

[2]क्षेत्रीय पशु चिकित्सा, रोग निदान एवं विस्तार केन्द्र, महेन्द्रगढ़, [3]पशु रोग जांच प्रयोगशाला, रोहतक

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

यह रोग क्या है?

भेड़–बकरियों में होने वाला प्लेग रोग एक अर्धजीर्ण से तीव्र अत्यधिक संक्रामक रोग है। अंग्रेजी भाषा में इस रोग को पी. पी.आर. (पेस्टी डेस पेटीटस रूमीनेन्टस) के नाम से जाना जाता है। विश्व में सर्वप्रथम यह रोग 1940 में अफ्रीका में खोजा गया था। तत्पश्चात् यह रोग भारत समेत संसार के बहुत से देशों में पाया गया है। भारत देश में यह रोग सर्वप्रथम 1989–90 में तमिलनाडु में पाया गया था। महामारी के रूप में होने वाले इस रोग में किसी एक जगह पर रोग ग्रसित पशुओं की संख्या 50–90 प्रतिशत तक हो सकती है तथा इस रोग से प्रभावित भेड़–बकरियों में मृत्यु दर 45–85 प्रतिशत तक हो सकती है। सामान्यतः प्लेग रोग की वजह से मृत्यु दर बकरियों में भेड़ों से ज्यादा होती है।

यह रोग होता कैसे है?

भेड़–बकरियों में प्लेग रोग मोरबीली वायरस नामक विषाणु से होता है। यह विषाणु गाय–भैंस में होने वाले प्लेग, कुत्तों में होने वाले डिस्टेम्पर एवं मनुष्य में होने वाले खसरा रोग के विषाणुओं के समान होता है। सामान्यतः यह विषाणु भेड़ एवं बकरियों में ही प्लेग रोग का कारण बनता है। बकरियों में यह रोग भेड़ों से ज्यादा पाया जाता है। कभी–कभार यह विषाणु गाय प्रजाति के पशुओं में भी अर्धजीर्ण प्रकार का प्लेग रोग कर सकता है। सफेद पूंछ वाले हिरण भी इस विषाणु से प्रभावित होकर रोगग्रस्त हो सकते हैं। यह विषाणु मनुष्य प्रजाति में रोग का कारण नहीं हो सकता है।

यह रोग फैलता कैसे है?

प्राकृतिक रूप से यह रोग मुख्यतः स्वस्थ पशुओं के रोगग्रस्त पशुओं से सीधे सम्पर्क में आने से फैलता है। इस रोग से प्रभावित भेड़–बकरियों के लिए प्रयोग में लाए गए चारा–पानी, बर्तन, बिछावन व अन्य उपकरणों के माध्यम से भी यह रोग अन्य स्वस्थ भेड़–बकरियोंमें फैल सकता है। इस रोग के रोगग्रस्त पशुओं के शरीर से होने वाले सभी प्रकार के स्त्राव एवं विसर्जन तथा मल में इस रोग के विषाणु बहुतायत में पाये जाते हैं, जो कि अन्य पशुओं में यह रोग फैलाने का कारण बन सकते हैं। रोगग्रस्त भेड़–बकरियों के मल के कारण यह रोग अन्य पशुओं में तेजी से फैल सकता है एवं महामारी का रूप भी ले सकता है। स्वस्थ भेड़–बकरियों के बाड़े में कई बार एक नए पशु का खरीदकर लाना एवं मिलाना भी इस रोग के फैलने का करण बन सकता है, क्योंकि नया खरीदकर लाया हुआ पशु कई बार अलाक्षणिक रूप में भी प्रभावित हो सकता है। स्वस्थ पशुओं में खाने एवं श्वास दो ऐसे रास्ते हैं, जिनके द्वारा मुख्य रूप से इस रोग के विषाणु शरीर में प्रवेश करते हैं। विश्व के कई अप्रभावित क्षेत्रों एवं देशों में इस रोग से प्रभावित क्षेत्रों से व्यापार के दौरान खरीदकर लाए गए पशु इस रोग को फैलाने का कारण बने हैं। पशुओं के शरीर पर पाए जाने वाले बाह्य परजीवियों से यह रोग नहीं फैलता है।

इस रोग के लक्षण क्या–क्या होते हैं?

भेड़–बकरियों में प्लेग रोग अर्धजीर्ण से तीव्र रूप में परीलक्षित हो सकता है। किसी एक जगह पर इस रोग से प्रभावित पशुओं की संख्या 50 से 90 प्रतिशत तक हो सकती है। प्रभावित बकरियों में इस रोग से होने वाली मृत्युदर 55–85 प्रतिशत हो सकती है जो कि भेड़ों (45–75 प्रतिशत) से ज्यादा होती है। रोगग्रस्त पशुओ में 3–6 दिन के ऊष्मायन समय के पश्चात् सर्वप्रथम अत्यधिक बुखार (104–1050°f) देखने को मिलता है। ऐसे पशुओं में भुख की कमी होने से लेकर पूरी तरह से चारा–पानी लेना बन्द कर देना पाया

जाता है। सुखा हुआ थूथन एवं श्लेष्मिक झिल्लीयों में लालीमा देखने को मिलती हैं इस रोग से प्रभावित पशुओं में शुरूआती दौर में नाकों से अत्याधिक तरल स्त्राव तथा छींक आती हैं। तत्पश्चात् नाकों से गाढ़ा पीला स्त्राव आने लगता है तथा पशु की सांसों में बदबु आने लगती है। कभी–कभी तो नाक से होने वाला स्त्राव इतना गाढ़ा एवं चिपचिपा होता है, कि नाक के चारों तरफ जम जाता है एवं एक परत बन जाती है, आगे चलकर पशु अत्यधिक सुस्त हो जाता है एवं निमोनिया के लक्षण आने लगते है, जिससे वजह से सांस लेने में परेशानी होने के कारण पशु की मृत्यु भी हो सकती है। भेड़–बकरियों में इस रोग के विषाणु पाचन तन्त्र को भी प्रभावित करते हैं। रोगग्रस्त पशुओं में मुँह तथा होठों के चारों तरफ खाल गलने लगती है तथा घाव हो जाते हैं, जहाँ की आगे चलकर काली परत सी भी जम जाती है। इस रोग से प्रभावित पशुओं में दस्त लग जाते हैं तथा दस्तों के साथ कई बार पीला चिपचिपा पदार्थ एवं खुन भी आने लगता है। दस्त के कारण पशु के शरीर में पानी की अत्यधिक कमी हो जाती है, जिसकी वजह से आगे चलकर पशु अत्यधिक कमजोर एवं थका हुआ लगने लगता है, शरीर का तापमान भी सामान्य से कम हो जाता है एक पशु की मृत्यु भी हो सकती है।

इस रोग की पहचान कैसे करें एवं उपचार क्या है?

भेड़–बकरियों में उपरोक्त बताए गए लक्षण दिखाई देने पर इस रोग के होने का अंदाजा लगाया जा सकता है, तथा पशुपालकों को तुरंत अपने नजदीकी पशु–चिकित्सक से सम्पर्क करना चाहिए। आपका पशु–चिकित्सक प्रभावित पशुओं में लक्षणों के आधार पर या प्रयोगशाला में नमूनों की जाँच करवाकर इस रोग के बारे में पुख्ता तौर पर आपको जानकारी दे सकता है। चूंकि यह रोग तेजी से फैलता है, अतः पशुपालकों को कोई लापरवाही नहीं बरतनी चाहिए।

चूंकि यह एक विषाणु जनित रोग हैं, इसके लिए कोई विशिष्ट उपचार या दवाई उपलब्ध नहीं है। पशु–चिकित्सक इस रोग से प्रभावित पशुओं में लक्षणों के आधार पर चिकित्सा एवं दवाईयां प्रदान करते हैं क्योंकि इस रोग में पशु काफी थका हुआ महसूस करता है एवं उसके शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता भी प्रभावित होती है। अतः पशु–चिकित्सक एंटीबायोटिक दवाओं एवं खून की नसों में ग्लुकोज सलाईन का भी प्रयोग करते है, ताकि इस दौरान पशु के शरीर को ताकत मिलती रहे एवं पशु अन्य किसी जीवाणु जनित रोग से भी ग्रस्त ना हो। पशुपालकों को चाहिए कि वो अपने रोगग्रस्त पशुओं पशु–चिकित्सक द्वारा उचित पूरा उपचार करवाएं।

इस रोग से बचाव एवं रोकथाम के तरीके क्या–क्या हैं?

भेड़–बकरियों में होने वाला प्लेग रोग (पी.पी.आर.) एक विषाणु जनित एवं तेजी से फैलने वाला रोग है। चूंकि इस रोग के उपचार के लिए कोई विशिष्ट दवाई उपलब्ध नहीं हैं, अतः इस रोग से बचाव एवं रोकथाम काफी महत्वपूर्ण हो जाता है। पशुपालक निम्नलिखित बचाव एवं रोकथाम के तरीके अपनाकर अपने पशुओं को इस रोग से बचा सकते हैं तथा इस रोग से होने वाली हानि से बचा जा सकता है।

1. अगर किसी पशुपालक के कुछ पशु इस रोग से प्रभावित हो जाते हैं, तो पशुपालक को चाहिए कि इन रोगग्रस्त पशुओं को तुरन्त स्वस्थ पशुओं से अलग कर देना चाहिए तथा पशु–चिकित्सक से उनका उपचार करवाएं। साथ–साथ स्वस्थ पशुओं पर भी पूरी नजर रखें कि उनमें तो रोग के कोई लक्षण दिखाई नहीं दे रहे हैं।
2. पशुपालकों को भेड़–बकरियों के बाड़े में साफ–सफाई का पूरा एवं विशेष ध्यान रखना चाहिए।
3. रोगग्रस्त पशुओं के बचे हुए चारे–पानी को स्वस्थ पशुओं को नहीं खिलाना चाहिए तथा प्रभावित पशुओं के काम लिए, काम में लिए गए बर्तन, बिछावन या अन्य उपकरणों को स्वस्थ पशुओं के सम्पर्क में नहीं आने देना चाहिए।
4. ऐसे क्षेत्र जहाँ कि इस रोग का फैलाव ज्यादा है, वहाँ से पशुपालकों को नया पशु नहीं खरीदना चाहिए।
5. पशु–बाड़े में कोई नया पशु लाने से पूर्व उसको कुछ दिन तक अन्य पशुओं से अलग रखना चाहिए एवं उस पर पूरी नजर रखनी चाहिए।
6. भेड़–बकरियों में प्लेग रोग (पी.पी.आर.) का बहुत ही कारगर एवं असरदार टीकाकरण (वैक्सीन) उपलब्ध है, जो कि ज्यादातर जगहों पर निशुल्क या बहुत ही कम कीमत पर पशु–चिकित्सालयों में उपलब्ध है। भेड़–बकरियों में इस रोग से बचाव के लिए कम से कम 3–4 महिने की उम्र में टीका लगवाया जा सकता है। अतः पशुपालकों को चाहिए कि अपने पशुओं का नियमित रूप से टीकाकरण अवश्य करवाएं, जिससे कि इस रोग से होने वाली क्षति से काफी हद तक बचा जा सकता है।
7. इसके बावजूद भी अगर किसी पशु में यह रोग हो जाता है, तो प्रभावित पशु को अलग करके पशु–चिकित्सक से उचित एवं पूरा उपचार करवाना चाहिए।

पोलिथीनः पशुओं के लिए अभिशाप

वीरेन्द्र सिंह, सुनील राजोरिया एवं राजेश सिंगाठिया

राजस्थान पशु चिकित्सा एव पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, बीकानेर

आज हम जिस युग में रह रहे हैं अगर उसे प्लास्टिक युग भी कहा जाए तो अतिशयोक्तिः नहीं होगा क्योंकि आज घर–घर में, दुकानों, ऑफिस, शादी समारोह व अन्य आयोजनों अस्पतालों, बस–अड्डे तथा रेलवे स्टेशनों इत्यादि स्थलों पर पोलिथीन का उपयोग प्रचुर मात्रा में हो रहा है जिस का अत्यधिक उपयोग न केवल पशुओं की मौत का कारण बन रहा है बल्कि मानव स्वास्थ्य पर भी प्रति कुल प्रभाव डालता है। पशु खाद्य पदार्थ को अखाद्य से छाँट कर अलग करने में असमर्थ होते हैं जिससे खाद्य सामग्री के साथ पोलिथीन, कागज, कपड़ा, बटन, सुई, कील इत्यादि ग्रहण कर लेते हैं। यह समस्या बाहर चरने वाले पशुओं, स्वामी रहित पशुओं एवं शहरों में अधिक पाई जाती है। पोलिथीन पशुओं के पेट में धीरे–धीरे जमा होकर व आपस में उलझ कर गेंद या रस्से का रूप ले लेती है जिस से पशुओं की पाचन क्रिया पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ने लगता है। पशु निरन्तर शारीरिक रूप से कमजोर व दूध उत्पादन गिरता है। अन्ततः पशु की अकाल मृत्यु हो जाती है। इस समस्या से बचने के लिए मनुष्य को पोलिथीन के उपयोग पर आत्म मंथन करना होगा।

पशुओं के पोलिथीन खाने के कारण

1. पशुओं के शरीर में खनिज तत्वों की कमी।
2. पशु मालिकों द्वारा अपर्याप्त भोजन देना तथा भूख से वंचित रखना।
3. चराई के लिए पशुओं को खुला छोड़ना।
4. पोलिथीन थैले में कचरा निस्तारण करने में वृद्धि होना।
5. स्वामी रहित पशुओं का अवारा घूमना।

पशुओं पर पोलिथीन निगलने से पड़ने वाले दुष्प्रभाव

जब पशु सड़कों, गलियों एवं मोहल्लों के बाहर फेंका हुआ कचरा (कपड़ा, बटन, सुई, कील) फल, सब्जियां तथा उनके छिल्लके इत्यादि खाते हैं तो पशु को ट्रोमेटिक रेटिकुलाइटिस हो जाता है जिससे बुखार, पेट दर्द, कब्ज, धनुष की तरह कमर तथा पुनरावर्ती रूप से हल्का आफरा

होता है। पोलिथीन थैले को गाँठ लगा कर फैंके हुए खाद्य पदार्थ समय के साथ सड़ते–गलते रहते हैं इस सड़े–गले पदार्थों को पशु पोलिथीन थैले के साथ निगल जाता है। जिससे गम्भीर विषाक्कता तथा पाचन तंत्र की विभिन्न समस्याएं जैसे दस्त, पेचिस तथा कृमि संक्रमध्स ये ग्रस्त हो जाते हैं। पोलिथीन की थैली या पशु की ग्रास नलिका में फंस जाने पर ग्रास नलिका मार्ग अवरूध हो जाता है जिससे पाचन तंत्र के अन्दर का दबाव 6–7 गुणा बढ़ जाता है। फेफड़े से कुंचित तथा श्वास गति तीव्र हो जाती है तथा शरीर के विभिन्न हिस्सों में ऑक्सीजन की आपूर्ति कम हो जाती है। पशु को समय पर उचित उपचार नहीं मिलने पर मृत्यु हो जाती है।

बचाव व उपचार

1. सर्वप्रथम लोगों को पशुओं पर पोलिथीन से पड़ने वाले दुष्प्रभाव के बारे में जागरूक करना चाहिए। सभी पशुओं को इसके दुष्प्रभाव से बचाया जाना चाहिए तथा इसका बचाव ही उपचार का सर्वोत्तम तरीका है।
2. गृहणियों द्वारा फल व सब्जी के छिलके, रसोई में बचे भोजन तथा घर के कुड़े आदि को पोलिथीन में बांधकर नहीं फैंकना चाहिए।
3. मनुष्य को सामान लाने व रखने के लिए पोलिथीन थैले के स्थान पर जूट व कपड़े के थैले का उपयोग करने हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए।

4. गांव, नगरपालिका, नगर परिषद् व नगर निगम द्वारा पोलिथीन व अन्य कुड़े के लिए यथा संभव स्थान चिन्हित किया जाए तथा उनका वैज्ञानिक तरीके से निस्तारित करने का स्थाई समाधान होना चाहिए।
5. पोलिथीन थैली को कानूनी रूप से पूर्णतया कानूनी प्रतिबंधित करना चाहिए तथा इसके उपयोग का कोई वैकल्पिक संसाधन ढूंढना चाहिए। यहां पोलिथीन पूर्णतयाः कानूनी प्रतिबन्धित होने के बावजूद सभी सार्वजनिक स्थलों पर पोलिथीन के ढेर लगे हुए हैं। अतः सरकार को गैर कानूनी तरीके से पोलिथीन बनाने वाले उदगम स्थान/फैक्ट्रियों को नष्ट करना चाहिए तथा लोगों को भी सरकार का सहयोग करना चाहिए।
6. पशुपालकों को अपने पशु को ऐसे स्थान पर नहीं चरने देना चाहिए जहां पोलिथीन कुड़े बहुतायत हो।
7. रूमिनोटोमी ऑपरेशन द्वारा पशुओं के पेट से पोलिथीन निकलना ही एकमात्र ईलाज है जो अधिक जटिल, मंहगा तथा अधिक संख्या में पशुओं पर करना आसान नहीं है अतः पशुओं को पोलिथीन थैलियाँ खाने से रोकना ही इस समस्या का सर्वोत्तम उपाय है।

विस्तार शिक्षा की विभिन्न गतिविधियों (ट्रेनिंग आदि) के लिए पशु विज्ञान केन्द्र

क्र.सं.	पशु विज्ञान केन्द्र	वैज्ञानिक का नाम
1.	पशु विज्ञान केन्द्र, फ्रैन्डस कॉलोनी, नजदीक करनाल बाई पास चौक, कैथल	डॉ. रमेश कुमार
2.	पशु विज्ञान केन्द्र, वैटेनरी पोली क्लीनिक, सोनीपत	डॉ. इन्द्रजीत सिंह
3.	पशु विज्ञान केन्द्र, पांडु पिंडारा, जींद	डॉ. रमेश कुमार
4.	पशु विज्ञान केन्द्र, सिरसा	डॉ. बी.एस. श्योकन्द
5.	पशु विज्ञान केन्द्र, भिवानी	डॉ. धर्मवीर सिंह दहिया
6.	पशु विज्ञान केन्द्र, रोहतक	डॉ. राजेन्द्र सिंह
7.	पशु विज्ञान केन्द्र, युगल विहार (दाहलीवास) रेवाड़ी	डॉ. अभय सिंह यादव
8.	पशु विज्ञान केन्द्र, नजदीक मिनी सैक्ट्रेट, गुड़गांव	डॉ. कृष्ण कुमार यादव
9.	विस्तार शिक्षा निदेशालय, लुवास, हिसार	डॉ. सज्जन सिंह एवं डॉ. देवेन्द्र सिंह
10.	पशु विज्ञान केन्द्र, अम्बाला	–

सैक्स्ड सीमनः पशु प्रजनन के क्षेत्र में विज्ञान का चमत्कार

प्रवीन कुमार, मोहित अंतिल एवं दिपिन चन्द्र यादव

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशुविज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

जैसा कि हम जानते है, वीर्य (सीमन) में दो प्रकार के शुक्राणु होते हैंः वाई क्रोमोसोम धारक शुक्राणु और एक्स क्रोमोसोम धारक शुक्राणु। जब नर का वाई क्रोमोसोम धारक शुक्राणु मादा के अण्डे से मिलता है तो नर पशु का जन्म होता है। इसके विपरीत जब नर का एक्स क्रोमोसोम धारक शुक्राणु मादा के अण्डे से मिलता है तो मादा पशु का जन्म होता है।

एक्स क्रोमोसोम का आकार और इसमें उपस्थित डी.एन.ए. की मात्रा वाई क्रोमोसोम की तुलना में ज्यादा होती है इसलिए फ्लोसाईटोमीटरी तकनीक के माध्यम से वीर्य में उपस्थित एक्स और वाई क्रोमोसोम धारक शुक्राणु को अलग किया जा सकता है।

एक्स क्रोमोसोम वाले वीर्य के प्रयोग से मादा पशुओं का उत्पादन होता है और वाई क्रोमोसोम वाले वीर्य के प्रयोग से नर पशुओं का उत्पादन होता है। सीमन की सैक्सिंग (सैक्स्ड सीमन) से मन चाहे लिंग (नर या मादा) के पशुओं का प्रजन्न संभव हो गया है। इस विधि की सत्यता लगभग 90 प्रतिशत है।

सभी पशुपालक दूध उत्पादन के लिये केवल मादा पशुओं के जन्म की कामना करते हैं क्योंकि नर पशु उनके व्यवसाय में कोई योगदान नहीं देते। ऐसी स्थिति में सैक्स्ड सीमन के प्रयोग से किसान मादा पशुओं (गायों) का उत्पादन कर सकते हैं। सैक्स्ड सीमन अब व्यापक रूप से उपलब्ध है और भारत में भी आयातित सैक्स्ड का प्रयोग बेहतर बछिया प्राप्त करने के लिए किया जा रहा है। पुल्लिंग वीर्य के रूप में सैक्स्ड सीमन का उपयोग लगभग न के बराबर है।

सैक्स्ड सीमन के लाभः

- इसके प्रयोग से केवल बछियों का जन्म होता है अतः दूध के उत्पादन में वृद्धि होती है और किसान को बछड़ों के लालन–पालन पर बेकार का खर्च नहीं करना पड़ता। ह्यारी परिस्थिति में सैक्स्ड सीमन का प्रयोग से अधिक लाभ होगा।
- अधिक बछियों के जन्म से किसान के पास अधिक संख्या में दूध देने वाली गायें उपलब्ध रहेगी।
- किसान को बाहर से गायें नहीं खरीदनी पड़ेगी जिससे बिमारियों की रोकथाम में मदद मिलेगी।
- सैक्स्ड सीमन से गाभिन बछियों में प्रसव के दौरान कठिनाई नहीं होती। अतः इसका प्रयोग बछियों में अधिक उपयोगी है।
- इसके अलावा गायों में भी कठिन प्रसव से राहत मिलती है।

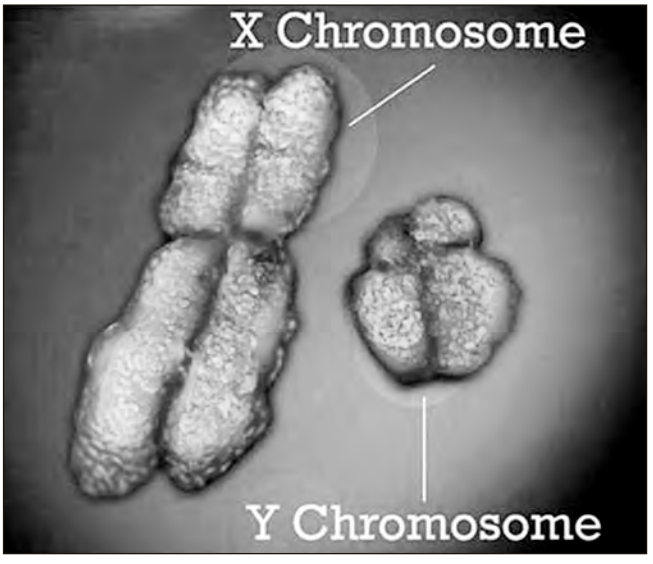

सावधानियाँ :

- पाराम्परिक वीर्य की तुलना में सैक्स्ड सीमन में शुक्राणु की संख्या (लगभग 2 मिलियन प्रति डोज) बहुत कम होती है अतः इसके प्रयोग से गर्भाधारण की सम्भावना पाराम्परिक वीर्य से लगभग 10–15 प्रतिशत तक कम होती है। इसका प्रयोग उन क्षेत्रों में अधिक लाभकारी है जहाँ कृत्रिम गर्भाधान (कृ.ग.) का काम अच्छा चल रहा है।
- स्वस्थ एवं सामान्य रूप से गर्मी में आने वाली जवान बछियों में इसके प्रयोग से आपेक्षित नतीजे मिलते हैं।
- सैक्स्ड सीमन की कीमत पाराम्परिक वीर्य की तुलना में कई गुनी अधिक है अतः कुशल एवं अनुभवी कृ.ग.

टैक्नीशियन ही इसका प्रयोग गर्मी के लक्षण देखकर सही समय पर करें तो अच्छा है।

सारांश :

सैक्स्ड सीमन आनुवंशिक रूप से बेहतर और लाभदायक होता है। इसकी कीमत भी पाराम्परिक वीर्य की तुलना में अधिक है। इसमें शुक्राणुओं की संख्या लगभग 2 मिलियन प्रति डोज है अतः अनुभवी कृ.ग. अनुभवी कृ.ग. टैक्नीशियनों को ही इसका प्रयोग करना चाहिए। कुंवारी बछियों में सैक्स्ड सीमन के उपयोग से अधिक लाभ मिलता है। इसके उपयोग से केवल बछियों का जन्म होता है और प्रसव के समय कठिनाई नहीं होती। हमारे देश के किसानों के लिये सैक्स्ड सीमन का इस्तेमाल बहुत उपयोगी और लाभदायक साबित होगा।

930-000-0857

whatsapp

लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

पशुपालन सम्बंधी जानकारियाँ पाएँ

नि:शुल्क SMS (मैसेज) द्वारा

पंजीकरण हेतु- 930-000-0857 (पशुपालक कॉल सेन्टर)

(सुबह 10 से 1 बजे तक) पर कॉल करें।

कैसे करें नवजात बछड़ों की देखभाल

सज्जन सिंह, राजेन्द्र सिंह श्योकन्द एवं सरिता

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

नवजात बछड़ा–बछड़ी ही पशुधन का भविष्य हैं। अधिकांश पशुपालकों का अत्यधिक ध्यान दूध देने वाले पशुओं पर होता है, नवजात बछड़े–बछड़ियों की देखभाल पर उनका ध्यान कम रहता है, फलस्वरूप उनकी ''शारीरिक वृद्धि एवं भविष्य में होने वाले उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उचित देखभाल के अभाव में नवजात बछड़े–बछड़ी कमजोर हो जाते हैं तथा उनकी मृत्यु तक हो जाती है, अतः अत्यधिक उत्पादक पशु बनाने के लिए बछड़े–बछड़ी के पालन– पोषण एवं प्रबंधन में लापरवाही नहीं बरतनी चाहिए, इससे उनकी मृत्युदर में कमी एवं दुधारू क्षमता में बढ़ोत्तरी होगी। जन्म के समय यदि बछड़ा–बछड़ी स्वस्थ्य होते हैं तो वे अधिक उत्पादक पशु बनते हैं और उनमें परिपक्वता भी आ जाती है। स्वस्थ्य बछड़े के लिए यह आवश्यक है कि उसकी देखभाल जन्म के पूर्व से की जाए इस हेतु गर्भित पशु को संतुलित एवं पौष्टिक आहार उपलब्ध कराना चाहिए गर्भित पशु के प्रतिदिन के आहार के लिए लगभग 20–25 किलो स्वच्छ हरा चारा एवं 2–3 किलो संतुलित दाना पशु के वजन एवं अवस्था अनुसार देना चाहिए। गाभिन पशुओं को दूसरे पशुओं से अलग रखना चाहिए एवं उन्हें दौड़ाना, मारना एवं डराने जैसे क्रिया–कलापों से दूर रखना चाहिए। खनिज लवण मिश्रण एवं नमक भी पशु के लिए आवश्यक है। अच्छी गुणवत्ता का आहार प्रदान करने से गर्भ में पल रहे भ्रूण को पोषक तत्व मिलते है एवं गर्भित पशु के ''शरीर में हुई पोषक तत्वों की क्षतिपूर्ति भी हो जाती है। ब्यांत के कुछ दिन पूर्व ग्याभिन पशु को सूखी घास के बिछावन पर रखना चाहिए।

जन्म के पश्चात नवजात की देखभाल

जन्म के पश्चात नवजात बछड़े के मुंह, नथुनों, आंखों एवं कानों से लेश्मिक झिल्ली को सूखी घास या स्वच्छ कपड़े से हटा देना चाहिए, जिससे उसकी सामान्य श्वसन क्रिया में बाधा उत्पन्न न हो। जन्मोपरान्त यदि बछड़ा श्वास लेने में असमर्थ हो तो कृत्रिम श्वसन कराना चाहिए, नवजात के वक्ष को हथेलियों के बीच लेकर हल्के से दबाने और ढीला करने से श्वास प्रारंभ हो जाती है। यदि बछड़ा आकार में छोटा हो तो उसके धड़ के पिछले भाग को पकड़कर तथा सिर को नीचे लटकाकर झुलाना चाहिए। बछड़े को जन्म देने के उपरान्त मादा उसे चाट–चाट कर

साफ करती है नवजात बछड़े की नाल को नाभि से 2 इंच दूरी से बांध देते हैं तत्पश्चात स्वच्छ एवं जीवाणु रहित ब्लेड़ से काटकर कीटाणुनाशक दवा टिंन्चर आयोडीन का फोहा लगा देते हैं।

सामान्यतः एक स्वस्थ्य बछड़ा जन्म के पश्चात 30 मिनट में खड़ा हो जाता है। निर्बल बछड़े स्वतः खड़े होने में असमर्थ होते हैं, उन्हें खड़े होने के लिए सहायता की आवश्यकता होती है। नवजात को जन्म के पश्चात एक से दो घण्टों में खीस अथवा मां का प्रथम दुग्ध देना अत्यन्त आवश्यक है। बच्चे को खीस पिलाने से पूर्व प्रसूता के थनों को लाल दवा पोटेशियम परमैंग्नेट के हल्के घोल से साफ कर देना चाहिए एवं खीस की प्रथम चार–पाँच धार जमीन पर निकाल देनी चाहिए। नवजात को दी जाने वाली खीस की मात्रा इसके शारीरिक भार पर निर्भर करती है। शारीरिक भार का दस प्रतिशत खीस प्रतिदिन दो से तीन बार, में देना चाहिए।

सामान्यतः बछड़े को प्रतिदिन 3–4 लीटर खीस की आवश्यकता होती है। खीस नवजात के लिए सर्वाधिक पौष्टिक एवं सुरक्षित पेय है, इसमें उपस्थित रोग प्रतिकारक बछड़े की रोग प्रतिरोधक क्षमता को दृढ़ करते हैं। खीस में प्रोटीन की मात्रा लगभग 27 प्रतिशत होती है। इसमें खनिज पदार्थ जैसे कैल्शियम, फास्फोरस एवं लोहे की मात्रा दूध की अपेक्षा कई गुना होती है यह हड्डियां एवं रक्त बनाने की दिशा में सहायक होती है। इसमें विटामिन ए, डी एवं बी प्रचुर मात्रा में विद्यमान होता है। बछड़े को खीस लगातर चार–पांच दिन तक देना चाहिए। खीस उपलब्ध न होने की दशा में अन्य पशु का अथवा कृत्रिम खीस पिलाया

जा सकता है। इसकी आवश्यकता की पूर्ति के लिए, एक अण्डे को 250 मिली ग्राम पानी में फेटकर उसमें आधा चम्मच अरण्डी का तेल, आधा लीटर दूध, 10,000 अन्तर्राष्ट्रीय इकाई विटामिन एवं 8 मिलीग्राम आरियोमाइसीन एण्टीबायोटिक का मिश्रण तैयार करते हैं और नवजात को पिला देते हैं। सामान्यतः प्रथम खीस पीने के दो घण्टे के अंदर विष बाहर निकल जाता है यदि नहीं निकले तो एक लीटर गुनगुने पानी में एक चम्मच सोड़ा बाईर्काब मिलाकर एनीमा देना चाहिए।

बछड़े–बछड़ियों को दो विधियों से पाला जाता है

1. **मां के साथ रखकर प्राकृतिक विधिः** इस पद्धति में बछड़े को मां के साथ रखा जाता है। दुग्ध दोहन से थोड़ा पूर्व व पश्चात उसे मां का दूध पिलाया जाता है। यह आसान एवं कम लागत वाली विधि है।
2. **पूर्ण अलगाव विधिः** इस विधि में बछड़े को मां से जन्म के तुरंत बाद अलग कर देते हैं, उसकी आहार व्यवस्था वैज्ञानिक विधि से की जाती है, इससे भविष्य के चयन एवं संतति परीक्षण के लिए मां के दुग्ध का सही लेखा रखा जा सकता है।

आवास व्यवस्था

नवजात बछड़े–बछड़ियों को स्वच्छ एवं हवादार बाड़े में रखना चाहिए। आवास गृह मे सूर्य का प्रकाश एवं पर्याप्त हवा का संचार होना चाहिए। बाड़े में सूखी बिछावन का प्रबंधन करना चाहिए, इसके लिए सूखी पत्तियों का प्रयोग कर सकते हैं। सभी बछड़ों को अलग–अलग बाड़ों में रखना उपयुक्त होता है। जिससे उन्हें संक्रामक बीमारियों से बचाया जा सकता है। एक बछड़े को लगभग 2–3 वर्ग मीटर स्थान की आवश्यकता होती है। आवास गृह में गर्म हवा एवं ठण्ड से बचाव की पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए। आवास गृह में दाना एवं पानी देने हेतु नांद बनी होनी चाहिए।

आहार व्यवस्था

नवजात बछड़े–बछड़ियों को प्रथम 4–5 दिन तक खीस पिलाना चाहिए, जिसकी मात्रा बछड़े के शरीर भार का 1/10 भाग के बराबर होनी चाहिए तीन महीने तक बछड़ों को पर्याप्त दूध उपलब्ध कराना चाहिए। अलगाव की स्थिति में बछड़ों को दूध पिलाने के प्रशिक्षण के लिए साफ बर्तन में दूध लेकर हाथ की दो–तीन उंगलियों को दूध में भिगोकर बछड़े के मुंह में डाल दें ताकि बछड़ा चूसना शुरू कर दें फिर हाथ को धीरे–धीरे नीचे दूध वाले बर्तन की ओर लाकर दूध में डुबो देने से बच्चा उंगलियां चूसते हुए दूध पीना सीख जाएगा। संतुलित आहार के रूप में गेहूं का चोकर दलिया, पिसा हुआ मक्का, शीरा एवं खनिज लवण, काफ स्टार्टर 20 दिन की उम्र से देना प्रारंभ कर देना चाहिए। जन्म के पन्द्रह दिनों के पश्चात हरा चारा देना प्रारंभ करना चाहिए, जिससे बछड़े के अमाशय के विकास में सहायता मिलती है। बछड़ों के वृद्धि की अवस्था में पर्याप्त मात्रा में आहार खिलाना चाहिए, किंतु आवश्यकता से अधिक नहीं खिलाना चाहिए।

चिन्हित करनाः उचित पालन–पोषण, देखभाल, लेखा–जोखा पंजीकरण एवं नित्यप्रति के प्रबंधन निर्णयों में पशुओं को चिन्हित करना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए कई विधियां अपनायी जाती है, जैसे कि दागना, गोदना, कान को विशेष आकृति में काटना, टैग लगाना इत्यादि।

सींग रोधनः सुरक्षा के दृष्टिकोण से बछड़ों को सींग रहित या कलिका रहित किया जाता है। इस क्रिया को 1–2 सप्ताह के अंदर करना चाहिए। सींग रोधन के लिए विद्युत सींग रोधन व रासायनिक विधि अपनायी जाती है। इनमें से विद्युत सींग रोधन विधि उपयुक्त होती है। रासायनिक विधि में सींग बटन के चारों ओर क्षेत्र के बाल काट कर मंद रोगाणुरोधक से साफ करके वेसलीन लगाई जाती है तत्पश्चात कारिटक सोड़ा की छड़ से सींग के बटन पर रक्त निकलने तक रगड़ते हैं तथा उस पर थोड़ा सा जिंक ऑक्साइड पाउडर लगाकर छोड़ देते हैं। रासायनिक विधि से घाव अधिक दिन तक बना रहता है तथा इसे सूखने में ज्यादा समय लगता है।

स्वास्थ्य संबंधी देखभाल : बछड़ों के पाचन तंत्र में आन्तरिक परजीवी उपस्थित होने से उनकी वृद्धि दर मंद पड़ जाती है क्योंकि भोजन का अधिकांश भाग ये परजीवी ले लेते है जिसकी वजह से बछड़े बछड़ी कमजोर हो जाते हैं। इसलिए बछड़ों को कृमि रहित करने के लिए नियमित रूप से कृमिनाशक दवा देना अत्यन्त आवश्यक है। कृमिनाशक दवा एक वर्ष में तीन से चार बार अवश्य देना चाहिए। संक्रामक रोगों से बचाव हेतु बछड़े–बछड़ियों का समय पर टीकाकरण करवाना अति आवश्यक है।

उपरोक्त सभी प्रबंधन के साथ–साथ बछड़े–बछड़ियों का उचित लेखा–जोखा रखना भी आवश्यक है क्योंकि पशुधन उद्यम का आर्थिक अनुमान मुख्यतः आलेखों पर ही आधारित होता है। पशुपालक यदि अपने नवजात बछड़े–बछड़ियों की देखभाल प्रस्तुत लेख अनुसार करेंगे तो यह सुनिश्चित है कि भविष्य में उनके बछड़े–बछड़ी उत्पादक पशु बनेंगे, जो निश्चित रूप से पशुपालन व्यवसाय में अधिकतम लाभ प्रदान कर पशुपालक की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ बनाएंगे।

गाय में बांझपन

मीनाक्षी विरमानी[1], जितेन्द्र यादव[2] और राकेश कुमार मलिक[1]

[1]पशु चिकित्सा शरीर क्रिया विज्ञान और जैव रसायन विभाग, लुवास

[2]अनुसंधान सहायक, राष्ट्रीय प्रतिरक्षा विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली

भारत में डेयरी फार्मिंग और डेयरी उद्योग में आर्थिक नुकसान का एक प्रमुख कारण पशु में निहितता/बांझपन है। एक बांझ पशु को बनाए रखना एक किसान के लिए आर्थिक बोझ है। ज्यादातर देशों में ऐसे जानवरों का वध करने के लिए प्रेरित किया जाता है लेकिन भारत के अधिकांश भाग में गोहत्या वर्जित है।

व्यवहार्य वंश पैदा करने के लिए कम या अनुपस्थित क्षमता को बांझपन कहा जाता है। मवेशियों में बांझपन के कई कारण हैं। एक प्रजनन कार्यक्रम का लक्ष्य 65 दिन के प्रजनन में पैदा होने वाली 90–95 प्रतिशत गायों का होना चाहिए। अगर गर्भावस्था/ब्यांत निश्चित दर से नीचे हैं, तो कारण पता लगाना महत्वपूर्ण है। बांझपन के संक्रामक और गैर–संक्रामक कारण होते हैं।

बांझपन के गैर संक्रामक कारण

- कुपोषण
- तनाव (गर्भावस्था के किसी भी स्तर पर तनाव, गर्मी का तनाव)।
- अनुवांशिक
- एक सांड, जो एक प्रजनन परीक्षा पास कर चुका है, का उपयोग करने में नाकाम रहना।
- गाय संख्या के लिए अपर्याप्त सांडों की संख्या।
- सांड में कम या अपर्याप्त कामेच्छा।
- विटामिन और खनिज की कमी।

गर्मी का तनाव बांझपन का एक प्रमुख कारण है। उच्च आर्द्रता गर्मी के तनाव को बढ़ाती है और गर्भधारण दर भी अधिक प्रभावित होने की संभावना होती है। आनुवंशिकी और अन्य पर्यावरणीय कारक भी बांझपन में भूमिका निभाते हैं। अन्य उत्पादन गुणों के लिए चयन करने से कभी–कभी प्रजनन क्षमता के खिलाफ चयन होता है। प्रजनन दक्षता में नस्ल के मतभेद हैं, खासकर जब बॉस के वृषभ की तुलना में बॉस इंडिकस नस्लों की तुलना करते हैं।

बांझपन के संक्रामक और विषाक्त कारण

- ब्रूसेलोसिस
- लेप्टास्पाइरोसिस
- ट्राइकोमोनासिस
- कैंम्पायलोबैक्टीरियोसिस
- संक्रमित बोवाइन राइनोट्रैचेटिस (आई बी आर)
- बोवाइन वायरल डायरिया वायरस (बी वी डी)
- एनाप्लाज्मोसिस
- नाइट्रेट विषाक्तता

निदान

निदान की कोशिश करने के लिए बांझपन सबसे निराशाजनक समस्याओं में से एक है। कई बार वास्तविक बीमारी या समस्या गाय के गर्भवती होने के लिए या ब्यांत शुरू करने से पहले कई महीनों का उद्भव होता है। इस का कोई एक परीक्षण नहीं हैं, जैसे कि एक रक्त का नमूना, जो सभी बीमारियों या समस्याओं के लिए परीक्षण कर सके। निदान के लिए आवश्यक प्रक्रियाएं प्रत्येक कारण या रोग के लिए अलग–अलग है। लैप्टोस्पिोसिस का निदान करने के लिए मूत्र के नमूने की आवश्यकता हैं, ट्राइकोमोनासिस और कैंम्पायलोबैक्टीरियासिस का निदान करने के लिए सांड से विशिष्ट परीक्षण आवश्यक हैं। हालांकि रक्त के नमूनों में आई.बी.आर. और बी.वी.डी. का निदान करने में मदद मिल सकती है अगर उचित समय पर नमूनों को लिया जाता है। ग्रीष्मकाल गर्भपात के निदान के लिए नाल और गर्भ सबसे अच्छा नमूने हैं। एक अच्छा समग्र झुंड–स्वास्थ्य अन्य समस्याओं की खोज करने के लिए महत्वपूर्ण है जो संबंधित समस्याओं की सूची को संकीर्ण कर सकते हैं।

नियंत्रण

1. **सांड प्रबंधन**
   - सांड के लिए प्रजनन परीक्षण करें।
   - कुंवारा सांड खरीदें।

- सांड को ट्राइकोमोनासिस और कैंबिलाबैक्टर के लिए टेस्ट करें।
- पर्याप्त सांड संख्या रखें।
- सांड कामेच्छा के लिए प्रजनन के मौसम के दौरान मवेशी को ध्यानपूर्वक देखें।

2. **गाय प्रबंधन**
   - खनिजों सहित पोषण कार्यक्रम– गाय की शरीर की स्थिति और प्रतिरक्षा प्रणाली को ठीक बनाए रखें।
   - तनाव को कम करें।
   - जो प्रजननशील नहीं हैं, गायों को अलग करें।
   - पशुचिकित्सक द्वारा गर्भावस्था के लिए जांच करना।
   - गर्भावस्था की जांच के दौरान जल्दी समस्याओं की पहचान और निदान करना।
   - प्रतिस्थापन गाय के रूप में केवल कुंवारी हीफर (झोटी) खरीदना।

930-000-0857

whatsapp

लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

प्रमुख गतिविधियाँ

1. **पशुपालक प्रशिक्षण कार्यक्रम**
2. **पशुपालक कॉल सेन्टर (930-000-0857)**
3. **नि:शुल्क SMS सेवा**
4. **पशु पालन सम्बंधी पाठ्य सामग्री**
   (पशुधन ज्ञान, डेयरी फ़ार्मिंग मार्गदर्शिका, कैसे करें पशुपालन, मुर्गीपालन मार्गदर्शिका इत्यादि)

गाय व भैंसों के खुरों का रख रखाव व पशु के स्वास्थ्य एवं प्रजनन पर प्रभाव

मोहित अंतिल, प्रवीन कुमार एवं दिपिन चन्द्र यादव

लाला लाजपत राय पशुचिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

पशुपालन व्यवसाय का मूल स्तंभ है पशु का स्वस्थ रहना एवं पशु का मूल स्तंभ है, पशु के पैर। आज के आधुनिक युग में पशुओं के लिए चारागाह कम हो गए हैं एवं पशु एक जगह पर ज्यादातर हो जाती है एवं एक जगह पर ज्यादातर समय बांधे रहने के कारण पशु के खुर जल्दी बढ़ते रहते हैं तथा साफ–सफाई न रहने के कारण खुरों की बीमारी हो जाती है।

ज्यादातर यह देखा जाता है कि पशु पालन खानपान का अच्छा ध्यान रखता है परंतु खुरों की देखभाल करना भूल जाता है। इसका एक मुख्य कारण पशुपालक को इसके बारे में अधिक जानकारी का न होना एवं सक्षम कारीगर की कमी है। प्रायः देखा जाता है कि विदेशी एवंसंकर नस्ल की गायों में खुरों की समस्या ज्यादा होती हे। ऐसा इसलिए है क्योंकि इन प्रजाति की गायों के खुर देशी गायों के मुकाबले मुलायम होती है एवं इन प्रजातियेां में रोग प्रतिरोधक क्षमता भी कम होती है।

खुरों की देखभाल का महत्व

खुरों के खराब होने के कारण पशु लंगड़ाने लग जाता है एवं पशु के पैर में सूजन भी आ सकती है। पशु के चलने एवं उठने में भी दिक्कत आती है। कई बार तो पशु उठ पाने में भी असमर्थ हो जाता है एवं दर्द के कारण खाना–पीना भी छोड़ देता है। खुर खराब होने के कारण पशु दूध देना कम या बंद कर देता है। पशु की प्रजनन क्षमता प्रभावित होती है एवं नर पशु में प्रजनन करने की क्षमता पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है।

खुर खराब होने के कारण

पक्के एवं सख्त फर्श पर पशु के खुर के मुलायम भाग पर फिसलने के कारण रगड़ लगना, किसी नुकीली वस्तु से जख्म होने, रेशा पड़ना, पशु का काफी समय गीले एवं गंदगी वाले स्थान पर खड़ा रहना, खुर बनाते समय खुर के संवेदनशील हिस्से को घायल कर देना। पशु के आहार में खनिज पदार्थों की कमी के कारण भी खुर खराब होने लगते हैं।

अंतः खुर खराब होने के मुख्य कारण हैं असंतुलित आहार, गलत रख रखाव एवं संक्रमण।

खुर की कुछ मुख्य समस्याऐं निम्नलिखित हैं :–

1. खुर में रेशा पड़नाः– किसी भी सख्त वस्तु या नुकीली वस्तु से जख्म एवं कीटाणुओं द्वारा संक्रमण के कारण तले में रेशा पड़ जाता है।
2. खुरों की अनियंत्रित वृद्धिः– खुरों को समय पर न काटने के कारण अनियंत्रित बढ़ते रहते हैं तथा पशु के चलने में दिक्कत पैदा होने लगती है।
3. सूजनः– खुर की संवेदनशील त्वचा में सूजन आने के कारण पशु लंगड़ाकर चलने लगता है एवं इस बिमारी में पशु के स्वास्थ्य के साथ–साथ प्रजनन पर भी बहुत

बुरा प्रभाव पड़ता है।

4. तले में अलसरः– खुर के तले पर न ठीक होने वाला जख्म हो जाता है एवं उसमें से खून आने लगता है।
5. खुर के पिछले हिस्से में गाँठ भी हो जाती है एवं खुर पर दरारें पड़ना इत्यादि कुछ सामान्य पाई जाने वाली समस्याएँ।
6. खुर की सफेद रेखा में संक्रमण होने के कारण एवं खुर के उत्तकों में समस्या आना कुछ सामान्य पाई जाने वाली समस्याएं हैं।

खुर की संभाल के तरीके निम्नलिखित हैंः–

1. पशु के बांधने का स्थान साफ सुथरा एवं नरम होना चाहिए।
2. पशु के खुरों की कटाई हर 6 महीने में करवानी चाहिए।
3. पशु के बाड़े में संक्रमण रोधी की स्प्रे करनी चाहिए ताकि बीमारी करने वाले कीटाणुओं एवं जीवाणुओं का नाश हो सके।
4. कम से कम सप्ताह में एक बार (खुरों को संक्रमण रोधी दवा) के घोल में 20–30 मिनट तक रखना चाहिए।
5. पशुओं को संतुलित आहार देना चाहिए।
6. यदि पशु हल्का लंगड़ापन दिखाए तो उसी समय पशु चिकित्सक से पशु की जाँच करवानी चाहिए।
7. पशु के खुर हमेशा अच्छे कारीगर से बनवाने चाहिए।

विस्तार शिक्षा की विभिन्न गतिविधियों (ट्रेनिंग आदि) के लिए पशु विज्ञान केन्द्र

क्र.सं.	पशु विज्ञान केन्द्र	वैज्ञानिक का नाम
1.	पशु विज्ञान केन्द्र, फ्रैन्डस कॉलोनी, नजदीक करनाल बाई पास चौक, कैथल	डॉ. रमेश कुमार
2.	पशु विज्ञान केन्द्र, वैटेनरी पोली क्लीनिक, सोनीपत	डॉ. इन्द्रजीत सिंह
3.	पशु विज्ञान केन्द्र, पांडु पिंडारा, जींद	डॉ. रमेश कुमार
4.	पशु विज्ञान केन्द्र, सिरसा	डॉ. बी.एस. श्योकन्द
5.	पशु विज्ञान केन्द्र, भिवानी	डॉ. धर्मवीर सिंह दहिया
6.	पशु विज्ञान केन्द्र, रोहतक	डॉ. राजेन्द्र सिंह
7.	पशु विज्ञान केन्द्र, युगल विहार (दाहलीवास) रेवाड़ी	डॉ. अभय सिंह यादव
8.	पशु विज्ञान केन्द्र, नजदीक मिनी सैक्ट्रेट, गुड़गांव	डॉ. कृष्ण कुमार यादव
9.	विस्तार शिक्षा निदेशालय, लुवास, हिसार	डॉ. सज्जन सिंह एवं डॉ. देवेन्द्र सिंह
10.	पशु विज्ञान केन्द्र, अम्बाला	–

आधुनिक प्रौद्योगिकी के रूप में पशु आहार में एंजाइम पूरकता का करे इस्तेमाल और किसान रहे खुशहाल

मयूख घोष[1], शैयद सफिक[2] एवं राजेश कुमार[3]

[1]जैव रसायन विभाग, रांची वेटनरी कॉलेज, झारखण्ड
[2]लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)
[3]पशु शरीर क्रिया विज्ञान विभाग, पूकोड वेटरनरी कॉलेज, केरल

भारत में ज्यादातर छोटे व भूमिहीन किसान हैं जो कि साल के ज्यादातर समय आंशिक आमदनी ही कर पाते हैं इसीलिए पशुपालन इनके लिए अच्छा विकल्प है क्योंकि इसमें कम जमीन की जरुरत होती है तथा जिसमें आमदनी का निरंतर प्रवाह बना रहता है। इसके अलावा ये एक पूर्ण व्यवसाय के रूप में भी अपनाया जा सकता है। भारत पशु जनसंख्या में विश्व में दूसरा स्थान रखता है, परन्तु प्रतिपशु उत्पादन के मामले में यह विकसित देशो से काफी पीछे है। 1991 के वैश्वीकरण के बाद भारत का बाजार दुनिया के अन्य देशों के लिए भी खुल गया है। इसीलिए हमारे किसानों की प्रतिस्पर्धा दुनिया के अन्य किसानों के साथ है। इस प्रतिस्पर्धा में बने रहने के लिए हमारे किसानों को प्रति पशु उत्पादन बढ़ाना पड़ेगा। इसके लिए नया प्रौद्योगिक, उन्नत पशु नस्ल चयन, वैज्ञानिक पशु प्रबंधन ,पौष्टिक पशु आहार का प्रयोग करना आवश्यक है।

पशु आहार पशुपालन व्यवसाय का एक प्रमुख अंग है जो कि कुल व्यय का 50–70 भाग होता है। पशुओं से अधिकतम उत्पादन लेने हेतु पशुओं को संतुलित आहार देने कि आवश्यकता होती है। संतुलित पशु आहार बनाने के लिए हरा चारा जैसे कि बरसीम, लूसरन, मक्का इत्यादि, सुखा चारा जैसे गेहुं एवं धान का पुवाल, पशु दाना मिश्रण इत्यादी एवं पुरक आहार जैसे खनिज मिश्रण, इनजाइम सप्लीमेन्ट प्ररोवायोटिकस इत्यादि का निश्चित अनुपात में मिश्रण किया जाता है, जो कि एक पशुचिकित्सक ही कर सकता है क्योंकि आहारिक जरूरत एवं मात्रा पशुओं कि नस्ल, उम्र, उत्पादन क्षमता, शारीरीक क्रिया के ऊपर निर्भर करती है इसलिए संतुलित पशुआहार बनाने व खिलाने की मात्रा पशुचिकित्सक के परामर्श के अनुसार निर्धारित करें। आजकल सन्तुलित पशु आहार काफी महंगे हो गए हैं क्योंकि हमारा देश 60 प्रतिशत हरा चारा, 64 प्रतिशत दाना एवं 23 प्रतिशत सुखे चारे की कमी से जूझ रहा है इसलिए विकल्प के तौर पर स्थानीय गैर परम्परागत पशु चारे का उपयोग कर सकते हैं जो कि सस्ते व बहुतायत में मिलते हैं। गैर परम्परागत पशुचारा का पाचनगुण कम होता है एवं इसमें अकसर कुछ पोषण–विरोधी घटक होते हैं जो इसके पौष्टिक गुणों को कम कर देता है। उपरोक्त समस्या का समाधान पशुचारा में एंजाइम पूरकता द्वारा किया जा सकता हैं। यह एक आधुनिक प्रोद्योगिकी है जिसके इस्तेमाल से पशुआहार का पाचनगुण बढ़ाया जा सकता है जो फलस्वरूप पशुपालक को अधिक मुनाफा दे सकता है।

एंजाइम क्या होता है ?

एंजाइम एक जैविक अनुघटक है जो किसी भी जैविक या रसायनिक क्रिया के दर को बढ़ाता हैं। आहार के पाचन के लिए किसी भी प्राणी के उदर में एंजाइम का उत्सर्जन आवश्यक हैं। पाचन एंजाइम के आंशिक अथवा पूर्ण अनुपस्थिति में आहार का समुचित दोहन नहीं हो पाता हैं। सुकर तथा मुर्गियो के पाचन क्रिया में विशिष्ट पाचन एंजाइम की कमी के कारण आहार का 20–25 प्रतिशत तक भाग अनुपयोगी रह जाता हैं। इन विशिस्ट पाचन एंजयमो को पशु आहार में मिलाके खिलाने से इनकी कमी को पूरा किया जा सकता हैं। इन एंजयमो का व्यावसायिक उत्पादन हमारे देश की कई कंपनिया कर रही हैं। एंजाइम का चयन पशु आहार तथा पशुओं के पाचन प्रकृति के अनुरूप ही करना चाहिए। पाचन क्रिया के आधार पर पशु दो प्रकार के होते हैं:–

1. एक–आमाशयिक पशु इसके अन्तर्गत सुकर, मुर्गी, कुत्ते, बिल्ली इत्यादि आते हैं।
2. जुगाली करनेवाला पशु इसके अन्तर्गत जैसे की गाय, भैंस, भेड़, बकरी इत्यादि आते हैं। इनका पाचन

क्रिया एक–आमाशयिक पशु से अलग होता हैं।

एक–आमाशयिक पशुओं के आहार में एंजयम पूरकता का प्रभाव :

1) अंतर्जात पाचक एंजाइम पूरकता पशु आहार का तीव्र तथा बेहतर पाचन कराता हैं।
2) आहार में उपस्थित फॉस्फोरस को निर्गत करके जैविक क्रिया के लिए उपलब्ध कराता हैं।
3) यह हरा चारा में मजौद कोशिका भित्ति के आवरण को तोड़कर ऊर्जा तथा न्यूक्लिक एसिड की प्राप्ति कराता हैं।
4) यह कार्बोहाइड्रेट–प्रोटीन कड़ी को तोड़ कर न्यूक्लिक एसिड एवं एमिनो की उपलब्धता को बढ़ाता हैं।
5) यह आहार में उपस्थित विरोधी पोषण कारकों को हटा देता हैं।

पशु आहार में व्यवहारिक एंजाइम

1. **फाइटेजः** यह एंजाइम भोजन में मौजूद फास्फोरस की जैव उपलब्ध्ता को बढ़ाता हैं। सुकर एवं पोल्ट्री के आम तौर पर 15–20 प्रतिशत फाइटेट–फास्फोरस होता हैं। सामान्य रुप में 500–1000 एफ0टि0यु0/कि.ग्रा. फीड की दर से फाइटेज एंजाइम के उपयोग फास्फोरस की जैव उपलब्धता को 50 प्रतिशत तक बढ़ा सकता हैं जो की हड्डी और अण्डा के गठन के लिए आवश्यक है। शुकर फीड में फाइटेज का उपयोग द्वारा सुअर के आहार के खर्च में लगभग 3 प्रतिशत तक लागत कम किया जा सकता हैं।

2. **गैर–स्टार्च पौलीसैकराइढेज एंजयमोंः** हरा चारा आधारित फीड में स्टार्च एक–आमाशयिक पशुओं के लिए पशुओं के का प्रमुख स्रोत है। लेकिन चारा में गैर–स्टार्च आधारित ऊर्जा स्रोतों भी शमिल हैं जो एक–आमाशयिक जानवरों द्वारा प्रभावी ढ़ग से उपयोग नहीं हो पाता हैं क्योंकि इन जानवरों में गैर–स्टार्च पौलीसैकराइढेज के लिए पाचक एंजाइम का उत्पादन नहीं होता हैं। सेल्युलेजए जाइलानेज और ग्लुकानेज इत्यादि एंजाइम जो इन गैर–स्टार्च आधारित ऊर्जा स्रोतों को जानवरों के लिए उपलब्ध कराता हैं। पशु आहार में इनकी पूरकता फ़ीड के बेहतर उपयोग द्वारा अधिक प्रदान करेगाा और कम लागत में वृद्धि और अधिक उत्पादन में मदद करेगा। इसके अलावा इनके इस्तेमाल कराता से प्रबंधन संबंधित समस्याओं में भी कमी किया जा सकता हैं जैसे की पाल्ट्री में चिपचिपा गोबर जो की कौकसीडियोसीस और अन्य रोगों के प्रभावी कारक हैं। 500 आइ0यु0/कि.ग्रा. फीड की दर से जाइलानेज और 2000 आइ0यु0/कि.ग्रा. की दर से ग्लुकानेज एंजाइम का इस्तेमाल फीड रूपांतरण अनुपात (एफसीआर) का 1.5 से 7 प्रतिशत तक और दैनिक शरीर के वजन को 15 प्रतिशत तक बढ़ा सकता हैं। इस प्रभाव फीड के प्रकार पर भी निर्भर करता है। अधिक कोशिका भित्ति युक्त फीड में एंजाइम पूरकता ज्यादा प्रभावी होता हैं जैसे जिस पशु आहार में गेहूँ की मात्रा अधिक रहता हैं उसमें एंजाइम पूरकता अधिक मक्का युक्त आहार में इसका उपयोग से ज्यादा प्रभावी होता हैं। इसके अलावा यह वृद्ध पक्षियों (अंडे देने वाली मुर्गी) में युवाओं की तुलना में अधिक प्रभावी पाया गया हैं। बिटा–ग्लुकानेज आमतौर पर, जौ और जई आधारित आहार में उपयोग किया जाता है, जबकि जाइलानेज पारंपरिक रूप से गेहूं आधारित आहार में उपयोग किया जाता हैं। अनाज आधारित फीड में प्रमुख घटक के रूप में सेल्युलेज का इस्तेमाल किया जाता है। एंजाइम के उपयोगिता सुकर के भोजन के प्रकार पर भी निर्भर करता हैं, जैसे कि चावल की चुन्नी पर इसका आसार अधिक पाया गया हैं जबकि गेंहू में इसका आसार काम पाया गया हैं। सुकर आहार में कारबोहाइड्रेज (सेल्युलेज, जाइलानेज, ग्लुकानेज, एमिलेज, मेनानेज, आदि एक साथ) के उपयोग, सुकर पालन में लगभग 8 प्रतिशत लागत कम कर देता है।

3. **एमिलेजः** अनाज के फलीओं का 2–8 प्रतिशत और लेगम युक्त आहार का 19–28 प्रतिशत अवशेषण पाचन के अंत तक नहीं हो पाता है। एमिलेज स्टाच की पाचन की दक्षता में काई वृद्वि करता हैं जो की सीधे स्टार्च की जैविक उपलब्धता को बढ़ाता है जिससे की समान मात्रा की आहार से ज्यादा उत्पादन हासिल किया जा सकता है। बिटा–एमिलेज एंजाइम स्टार्च के पाचन के लिए प्रयोग किया जाता है। मक्का और बाजरा पोल्ट्री फीड़ के प्रमुख घटकों के रुप में इस्तेमाल किए जाते हैं जिससे काफी मात्रा में स्टार्च हैं। इसलिए पोल्ट्री फीड़ में एमिलेज 800–1800 आइ0यु0/कि.ग्रा. की दर से मिलाया जा सकता है। आहार में इन एंजाइम की पूरकता दैनिक वजन में 3–9.4 प्रतिशत तक एवं चारा रुपांतरण (एफ.सी.आर) में 4–5 प्रतिशत तक सुधार ला सकता है। यह प्रट्रीन के पाचन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है क्योंकि कारबोहाइड्रेज, कार्बोहाइड्रेट–

प्रोटीन लिंकेज को तोड़कर ब्रायलर फीड़ में मिथेनिन की तुलना में सिसटिन की पाचकता को बढ़ाता है। कारबोहाइड्रेज प्रोटिन के समग्र पाचनशक्ति में 16 प्रतिशत तक सुधार ला सकता है।

4. **प्रोटिएजः** वैसे प्रोटिन जिसका पाचन गुण कम है ये आहार की खपत को घटाकर ब्रायलर मुर्गियों के दैनिक वजन वृद्वि को कम कर देता है। इसके कारण पोल्ट्री और सुकरों के भोजन में प्रोटिएज का इस्तेमाल किया जाता है, यह भोजन को असरदार तरीके से पचाता है। और प्रोटिन के उपलब्धता को बढ़ाता है जो कि मांस की वृद्वि के लिए आवश्यक होता है। प्रोटिएज अनेक प्रकार के होते हैं इनका चयन राशन की सामग्री तथा पशु की उम्र में भी निर्भर करता है। सामान्य तौर पर 200–300 मि0लि0ग्रा0/कि.ग्रा. की दर से प्रोटिएज का उपयोग फीड पर होता है । प्रोटिएज के साथ एमिलेज को आहार में देने से पोल्ट्री के वजन में 5.15 प्रतिशत तक कि वृद्धि र्दज किया जा सकता है परन्तु इसका प्रभाव फीड के प्रकार पर भी निर्भर करता है। सुकरों में प्रोटिएज पूरक देने से उनका वृद्धि 14 प्रतिशत तक पाया गया है। प्रौटिएज का प्रभाव 60–90 दिनों के सुकरों में 30. 60 दिनों के सुकरों के तुलना में ज्यादा पाया जा सकता है। सुकरों के छौनो को अम्लीय प्रोटिएज खिलाने से उनका वजन में तीव्र वृद्धि होता है। इनका प्रभाव परोक्ष रूप से भी सहायक है क्योंकि यह पोल्ट्री में इ0 कोलाइ के कारण व्याधी को कम कर देता है तथा सुकर में ऐलर्जी को भी कम करते हुए उनको स्वस्थ रखता है जिससे कि वे ज्यादा जीवित रहते हैं।

5. **बीटा मेनानेजः** सोयाबीन , पाम कर्नेल, सीसम, ग्वार आधारित चारे में मेनानेज होता है जो जानवरों में इस तरह के फीड की उचित पाचन को रोकता हैं। मेनानेज के साथ अन्य एंजाइम का प्रयोग करने से इन चारों को सुपाच्य तरीके से पाचन किया जा सकता है। राजस्थान और मध्यप्रदेश में सोयाबिन तथा ग्वार के चारा सस्ते में मिलते है और इनका प्रयोग पशुओं के चारे बनाने में अक्सर किया जाता है। सोयाबिन तथा ग्वार में विरोधी पोषण कारक होते हैं जो कि भोजन में मौजुद अन्य महत्वपुर्ण लाभकार तत्वों के अवशोषण में बाधक के तौर पे कार्य करते हैं जिससे कि पशुओं के स्वास्थ एवं शारीरिक विकास को अवरुद्ध करता है। फीड में एंजाइम पूरकता के द्वारा इन विरोधी पोषण कारको के हानिकारक प्रभाव को कम किया जा सकता हैं जिससे की एक–आमाशयिक जानवरों के आहार में इन सामग्रीओ को चारा का सस्ता स्रोत के रुप में इस्तेमाल किया जा सकता हैं। इसे 1.5 से 10 लाख इकाई प्रति टन फीड के दर से चारा में मिला कर पोल्ट्री में एफ0सी0आर0 3 से 6 प्रतिशत और वजन 7 प्रतिशत तक बढाया जा सकता है। इसी प्रकार का एंजाइम पुरक सुकर के भोजन में भी प्रयुक्त किया जा सकता है (जैसे कि मक्का तथा सोयाबिन से र्निमित चारा)।

6. **पैक्टीनेज–एंजाइमः** यह एंजाइम रेसा को तोड़ता है जो कि पौधों में उपस्थित एक कोसिका भिति बहुशर्करा है। इसके अलावा यह फल के पकने की प्रक्रिया में भी मदद करता है। पूर्ण वसा युक्त कनोला या राई बीज एवं पटुआ सिंग बीज आधारित आहार में पैक्टीनेज एंजाइम का प्रयोग से चारे का सकारात्मक उपयोग होता है। इसलिए एंजाइम पूरक के रूप में पैक्टीनेज एंजाइम को 50–100 आइ0यु0/कि. ग्रा. फीड़ की दर से आहार में मिलाया जा सकता है।

फीड में एंजाइम पूरकता से अधिक लाभ एंजाइम का स्त्रोत, दर व मिलाने का सही तरीके पर निर्भर करता है, इसलिए खिलाने के सूत्रीकरण अनुभवी स्थानीय पशु चिकित्सक की सलाह के अनुसार किया जाना चाहिए।

जुगाली करने वाले पशुः इन पशुओं के उत्पादन मुख्य रूप से हरा चारा पर निर्भर करता है जिनके पाचन उदर में मौजुद जीवाणु द्वारा होता है। सुक्ष्मजीवी पाचन के कारण पशु हरा चारा में उपस्थित कोशिका भिति को तोड़कर उससे उर्जा का प्राप्ती करता है जो कि अन्य पशु नही कर पाता है। सुक्ष्मजीवी पाचन द्वारा भी पौधों का पाचन पुर्ण नही होता है और खपत का केवल 10 से 35 प्रतिशत ही शुद्व ऊर्जा के रुप में उपलब्ध होता है। फाइबर पाचनशक्ति में सुधार करने के लिए जुगाली करने वाले जानवरों में ज्यादातर सेल्युलेज और हेमीसेल्युलेज प्रमुख रेसापाचक एंजाइमों के रुप में इस्तेमाल होता है। धान और गेहुं का पुवाल तथा घास इन पशुओ के राशन का महत्वपुर्ण घटक होते हैं जो की फाइबर युक्त चारा के अन्तर्गत हैं। अतप्रतिशत फाइबर कि पाचकता के बढाने से पशुओं के डाइजेंस्टिबल ऊर्जा में बढ़ोतरी होती है। इसके परीणाम स्वरूप प्रति कि0ग्रा0 दुध उत्पादन अथवा जीवित वजन वृद्धि के लिए कम फीड की जरूरत पड़ती है।

वहिर्जात फीड एंजाइम मुख्यतः चार जीवाणुओं (बैसलिन सबटिलिस, लेक्टोबेसिलस ऐसोटोफिलस, ले0 पलेन्टरम

तथा स्टकपटोकस फेसियम) तथा तीन कवकों (ऐसपरजिलस ओरायजा, टाईकोडरमा रइसई, सेकरोमइसस् सिरिभीसस्) से प्राप्त होता है। ये वहिर्जात एंजाइम कार्बोहाइड्रेट बंधन को तोड़कर पोषक तत्व जैसे स्र्टाच, प्रोटिन और वसा कि उपलब्धता को बढा देता है। पशु आहार में एंजाइमों निम्नलिखित प्रयोजन के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

1. फीड का प्रत्यक्ष हाइडोल्यसीस
2. माइक्रोबियल लगाव का संवर्धन
3. पेट के चिपचिपापन में अन्तर
4. रूमिनल एंजाइमो के साथ पूरक कारवाई
5. फीड के पोषक तत्वो के पाचन में सुधार

इस सम्बन्ध में सेल्युलेज और जाइलानेज वर्ग के एंजाइम सबसे महत्वपुर्ण हैं जो कि निर्दिष्ट रुप से कोशिका भिति में मौजुद सेल्युलोज और जाइलान में उपस्थित शक्कर बंधन को तोड़के पोषक तत्वों को उपलब्ध कराता है।

1) **भुस्सा के रेशे पचाने वाले फाइब्रोलाइटिक एंजाइम (सेलुलेज और हेमीसेलुलेज):** सेल्यूलोज घास और पुवाल आधारित चारे का सबसे महत्वपुर्ण घटक है और पशुओं के विकास और उत्पादन का प्रमुख स्त्रोत भी है सेल्यूलोज की पुर्ण पाचन पशु को विकास और उत्पादन के लिए अधिक उर्जा प्रदान कर सकता है। सेल्यूलोज के पाचन के लिए सेल्यूलेज एंजाइम का प्रयोग किया जाता है।

इस एंजाइम की अधिकतम सकारात्मक प्रभाव दूध उत्पादन के शुरु तथा मध्य चरण में पाया जाता है जिससे की दूध उत्पादन में 8 प्रतिशत तक की वृद्धि हो सकता है। फाइब्रोलाइटिक एंजाइम 1.5–3.5 मि0ली0 प्रति किलो का दर से फीड में मिलाया जाता है अथवा सेल्यूलोज एंजाइम 150 ग्राम प्रति टन के दर से चारे में मिलाया जाता है।

2) **जायलानेज और बीटा ग्लुकनेज:** पुआल से ज्यादा सेल्यूलोज निकलने के लिए जाइलन और गलुक्युरोनिक एसिड के पाचन आवश्यक है। जिससे की अधिक मात्रा में सेल्यूलोज माइक्रोबियल पाचन के लिए उपलब्ध हो सकता है। यह प्रक्रिया आमतौर पर जाइलानेज और बिटा–गलुक्युरोनेज द्वारा किया जाता है परन्तु इन एंजाइम को फीड में मिलाकर खिलाने से फीड का पाचन प्रकिया सहज हो जाता है। ये एंजाइम बंधनों को तोड़कर उर्जा उर्त्सजन को बढ़ाकर पशु का विकास करता है। इसे सुखे पुआल तथा घासों पर 1 अथवा 4 ग्राम प्रति शुष्क पदार्थ, 2 से 5 लिटर प्रति टन फोरेज, 1.4 लिटर प्रति टन दाने पर छिड़काव किया जाता है जो कि जाइलनेज के गतिविधी और फीड पाचन के उपयुक्त होता है। सेल्यूलोज एंजाइम पुरक उच्च फोरेज आहार के साथ देने से शारीरीक वजन लाभ में वृद्धि होती है परन्तु इसका प्रभाव ज्यादा दाना वाला आहार में उतना नही होता है। अधिक दुग्ध उपज देनेवाली पशुओं में भी दूध उत्पादन में 10 प्रतिशत तक कि व्रद्धि कर सकता है और इसका प्रभाव उच्च चारा (खल्ली) आहार में अधिक स्पष्ट है।

3) **फेरुलिक एसिड एस्टरेज:** खराब गुणवत्ता वाला चारे में लिगनीन और फेरुलिक एसिड होते हैं जो कि पौधा की कोशिका भिति में उपस्थित बहुशर्करा के जैविक अपघटन में निरोधात्मक प्रभाव डालता है। खराबगुणवत्ता वाले फोरेज जैसे कि धान और गेहूं के पुआल का पाचन इन पोलीसेकराइडेज एंजाइमो के मदद से बढ़ाया जा सकता है। साईलेज खिलाने के दौरान जुगाली करने वाले जानवरों के पेट में लेकटिक एसिड जीवाणु का रोपन हो जाता है जिसमें फेरुलिक एसिड एस्टरेज सक्रियता मौजुद है। इस तरह से साईलेज खिलाने के द्वारा प्रति 10000 लेकटिक एसिड जीवाणु के परोक्ष रोपन से अतिरिक्त लागत के बिना इस एंजाइम का प्रबंध किया जा सकता है।

4) **प्रोटिएज:** यह आमतौर पर प्रति 1–2 मि0ली0 ग्राम/कि0ग्रा0 आहार या 150–250 ग्रा0/टन दाना पर प्रयोग किया जाता है। प्रोटिएज के सक्रियता और फाइबर अपघटन में सुधार प्रोटिएज एंजाइम के प्रकार पर निर्भर करता है। अधिक दाने युकत चारे में एमिलेज और प्रोटिएज एंजाइम के पूरकता द्वारा दुग्ध उत्पादन को 10 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता हैं।

5) **एमिलेज:** चारे में एसपरजिलस ओराइजि पाउडर के मिश्रण से एमिलेज एंजाइम प्राप्त किया जा सकता है, जो की काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं खास तौर पे जब जनोवारो को सूखी, फटा मक्का, भाप में लुढ़का मक्का और न्यूनतम प्रसंस्कृत जौ इत्यादि संबलित आहार खिलाया जाता हैं। यह पाउडर 0.4 ग्राम/कि0ग्रा0 दाना के दर से चारे में मिलकर

जनोवारो को खिलाने से दुग्ध उत्पादन में 5 प्रतिशत तक सुधार हो सकता हैं।

6) **फाइटेजः** फाइटेट पौधों में फास्फोरस की प्रमुख रूप है, जो की गैर जुगाली करने वाले पशुओं द्वारा पूरी तरह से उपयोग नहीं हो पाता है। जिसके परिणामस्वरूप फास्फोरस के उत्सर्जन से फास्फोरस प्रदूषण होता हैं। परंतु जुगाली करने वाले जनोवारो के पेट में फाइटेज एंजाइम का उत्सर्जन होता हैं जिससे की इन पशुओ फाइटेट को फॉस्फोरस के स्रोत के रूप में उपयोग कर सकते हैं।

अधिक मुनाफा अर्जन के लिए इन एंजयमो को विभिन्न संयोजनों के रूप में पशु आहार में मिलाया जाता हैं। इसके इलावा उचित मूल्य पर पसंद का चारा की निरंतर कमी के कारण.अभी के पशु पालक गैर पारंपरिक फीड और फीड जिनमे विरोधी पोषक कारक के रूप में कुछ खामी हैं लेकिन पोषक तत्वों की अच्छा स्रोत हैं ऐसे पशु आहार का इस्तेमाल कर रहे हैं। इन फीडो में एंजाइम पुरकता के प्रयोग से पोषण विरोधि तत्वों को हटाया जा सकता हैं जो की काफी किफायती सिद्ध हो सकता हैं। इनके कुछ उदाहरण निम्नलिखित प्रकार है।

सोयाबीनः सोयाबीन से 18.6 प्रतिशत तक तेल, 78.7 प्रतिशत तक सोयाबीन की बरी मिलता है। और बाकी बेकार हो जाते हैं। सोयाबीन भोजन का एमिनो एसिड प्रोफाइल मछली के चुर का समान होता है सिर्फ मिथियोनीन को छोड़कर। मिथियोनीन की मात्रा को सही करके इसका प्रयोग पोल्टी फीड में किया जाता है क्योंकि यह वनस्पती वसा तेल के मुकाबले ज्यादा पाचकता तथा उपजायी उर्जा देता है। परन्तु उच्च गुणवत्ता वनस्पती तेल का उपयोग पशु आहार में नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसमें पोषण विरोधि तत्व मौजुद रहते हैं जो कि प्रोटिन के पोषकतत्व पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। इसके मुख्य विरोधि तत्व प्रोटिएज इनहिबीटोरस (ट्रिपसीन इनहिबीटोरस) और लैकटिन को गर्म करके नष्ट किया जा सकता है। ट्रिपसीन इनहिबीटोरस विकास निषेधात्मक के साथ अग्नाष्य अतिवृद्धि कारक होता है। जबकि लैकटिन पोषक तत्व कें अवशेसन में हस्तक्षेप करके विकास को बाधित करता है। सोयाबीन में इन दोनो के अलावा और भी पोषक तत्व विरोधि पदार्थ होता है जैसे कि ग्वाइटरोजेनस, विराधी विटामिन कारकों, फाइटेट। सोयाबिन युक्त पशु आहार को गर्मी के उपचार और एंजाइम पुरकता के द्वारा इन कमियों को दूर किया जा सकता है। सोयाबीन पशु आहार में विभिन्न मात्रा में मिलाकर (सुकर (31 प्रतिशत), ब्रायलर (27 प्रतिशत), डेयरी पशु (17 प्रतिशत) गौमांस पशु (9 प्रतिशत), अण्डेवाली मुर्गी (8 प्रतिशत), जलीय जानवर (5 प्रतिशत) खिलाया जा सकता हैं।

जौः जौ में ट्रिपसीन इनहिबीटोर मध्यम स्तर पर होते है, परन्तु बीटा ग्लुकन इसका बड़ा समस्या है। जाइलनस के समान बीटा ग्लुकन भी पोषक तत्वकें पाचन शक्ति को कम कर देती है। एन्जाइम का प्रयोग करके बीटा ग्लुकन के नकारात्मक प्रभाव को हटाया जा सकता है।

कनोला मिलः कनोला भेजन में सइनापीन होता है जो भूरा रंग के अण्डे देने वाली मुर्गियों में समस्या करती है। जब अण्डेवाली मुर्गी कनोला भोजन करते हैं तो उनके द्धारा दिए गए अण्डे से मछली जैसा दुर्गंध आने लगती है।

रेपसीड भोजनः पशुओं के चारे में रेपसीड का उपयोग प्रोटिन के स्त्रोत के तौर पर नहीं किया जा सकता क्योंकि इसमे गुलूकोसाइनोलेट होते हैं।

पशु आहार के गुणवत्ता बढ़ाने में एंजाइम पूरकता का क्षमता बहुत अधिक हैं परंतु इसका भी एक सीमा हैं। ये निम्नलिखित प्रकार के हैं –

1. एंजाइम की गतिविधि– कई एंजाइम निर्माता अलग–अलग स्त्रोतों से एंजाइम बनाते हैं। इसी कारण से एक ही एंजाइम से बनाया हुआ फीड का असर जानवारों पर अलग होता है।
2. प्रत्येक एंजाइम एक विशेष तापमान और पी.एच. में सबसे अधिक सक्रिय रहता हैं। इसलिए एंजाइमपूरक का फीड में इस्तेमाल करते समय पी0एच0 और तापमान का ख्याल रखना चाहिए।
3. एंजाइम को फीड में कार्य करने के लिए पर्याप्त समय की जरूरत होती है, इसलिए अच्छा परिणाम के लिए खिलाने से 12–15 घण्टे पहले इन्हे फीड में मिलाने कि जरूरत होती है।

सभी एंजाइम सभी प्रकार के फीड में उपयुक्त नहीं होते हैं। फीड का मिश्रण के समय संरचना के अनुकुल एंजाइमों का ही चयन करना चाहिए। पौधा आधारित फीड के लिए उपयुक्त एंजाइम का सूची तालिका संख्या एक में दी गई है।

इसलिए चारा का मिश्रण करने के लिए पशु चिकित्सक तथा पोषण विशेषज्ञ से मदद लेना चाहिए। जिससे कि फीड से

अधिक लाभ लिया जा सके। एंजाइम का प्रयोग आजकल बढ़ता ही जा रहा है क्योंकि पारम्पीरक पशु आहार महंगे होते जा रहे है। इस तहत अगर एंजाइम पूरकता का इस्तेमाल करके फीड का उपयोग में वृद्धि किया जा सके तो कम खर्च में पशुओं को अच्छा खाना खिलाया जा सकता है जिससे की लाभांश में ज्यादा वृद्धि हो सकता है।

तालिका 1: पौधों की सूची, उनमें पाई जाने वाले अपोषित पदार्थ और उसके लिए इस्तेमाल में आनेवाले एंजइमों की सूची

अपोषित पदार्थ	प्रधान पौधे	अपोषित तत्व	एंजाइम जिसका इस्तेमाल करें
फास्फोरस	लगभग सभी पौधे और घास	मौजूद फास्फोरस की पाचन शक्ति घटाते हैं।	फाइटेज
अरबीनोजाइलन्स	रेशा वाले पौधे जैसे की भुस्सा आदि	ऊर्जा या ताकत के स्त्रोत की पाचन शक्ति घटाते हैं।	जइलानेज, अरबीनो फ्युरिनोसाइडेज
ग्लूकैन्स	अनाज के दाने जैसे की जई और जौ	ऊर्जा या ताकत के स्त्रोत की पाचन शक्ति घटाते हैं।	ग्लूकानेज
मेनांनस	सोयाबिन पिसान, खमीर	ऊर्जा या ताकत के स्त्रोत की पाचन शक्ति घटाते हैं।	मेनांनेज
सैलूलोज़	रेशा वाले पौधे जैसे की भूसा, चारा आदि	एक–आमाशयिक जानवरों से नहीं पचते पर जुगाली करने वाले जानवरों की मुख ताकत का स्त्रोत है	सैलूलेज़
माडी	अनाज के दाने	एक–आमाशयिक जानवरों की मुखे ताकत का स्त्रोत है इसलिए पूर्ण उपयोग जरूरी है	ऐमिलेज
प्रोटीन	अनाज के दाने, फली, तिलहन खली दलहन खली	पूर्ण उपयोग जरूरी है	प्रोटीएज
वसा	दलहन खली	पूर्ण उपयोग जरूरी है	लाइपेज
हेमिसैलूलोज़	भुस्सा और चारा	पूर्ण उपयोग जरूरी है	हेमिसैलूलेज़
पेक्टिन	सेम तथा फलों के छिलके आदि	उर्जा या ताकत के स्त्रोत की पाचन शक्ति घटाते हैं।	पेक्टिनेज
गुलूकोसाइनोलेट	सफेद सरसों खली	प्रोटिन के स्त्रोत की पाचन शक्ति घटाते हैं।	प्रोटीएज

लोबिया: गर्मी के मौसम का हरा चारा

सज्जन सिंह, राजेन्द्र सिंह श्योकन्द एवं दलजीत सिंह

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

लोबिया, गर्मी व खरीफ मौसम की शीघ्र बढ़ने वाली फलीदार, पौष्टिक एवं स्वादिष्ट चारे वाली फसल है। इसकी खेती प्रायः सिंचित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। हरे चारे के अलावा दलहन, हरी फली (सब्जी) व हरी खाद के रूप में, अकेले अथवा मिश्रित फसल के तौर पर उगाया जाता है। अगर इसे ज्वार, बाजरा तथा मक्की के साथ उगाएं तो इन फसलों के चारे की गुणवत्ता भी बढ़ जाती है। गर्मियों में इसे दुधारू पशुओं की दूध देने की क्षमता बढ़ाने के लिए अवश्य खिलाना चाहिए। इसके चारे में औसतन 15–20 प्रतिशत प्रोटीन और सूखे दानों में 20–25 प्रतिशत प्रोटीन होती है।

लोबिया से हरे चारे की अधिक पैदावार लेने के लिए किसानों को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

अच्छी किस्म का चुनाव

सी.एस–88: लोबिया की यह एक उन्नत किस्म है जो कि चारे की खेती के लिए सर्वोत्तम है। यह सीधी बढ़ने वाली किस्म है जिसके पत्ते गहरे हरे रंग के तथा चौड़े होते हैं। इसके बीज का रंग हल्का गुलाबी भूरा या हल्का भूरा होता है। यह किस्म विभिन्न रोगों व कीटों से मुक्त है। यह किस्म पीले मौजेक विषाणु रोग के लिए रोगरोधी है। इस किस्म की बिजाई सिंचित एवं कम सिंचाई वाले क्षेत्रों में गर्मी तथा खरीफ के मौसम में की जा सकती है। इसका हरा चारा लगभग 55–60 दिनों में कटाई लायक हो जाता है। इसके हरे चारे की पैदावार 140–150 क्विंटल प्रति एकड़ है। यदि फसल बीज के लिए लेनी हो तो लोबिया की बिजाई का सही समय मध्य जुलाई से अगस्त का प्रथम सप्ताह है।

अन्य किस्में: बुन्देल लोबिया–1, यू.पी.सी. 5286, यू.पी.सी. 5287 इत्यादि।

मिट्टी व खेत की तैयारी

लोबिया की काश्त के लिए दोमट मिट्टी सबसे उपयुक्त होती है परन्तु रेतीली दोमट मिट्टी में भी इसे आसानी से उगाया जा सकता है। खेत की बढ़िया तैयारी के लिए 2–3 जुताई

काफी हैं।

बिजाई का समय

लोबिया की बुआई मध्य मार्च से लेकर जुलाई अन्त तक कर सकते हैं। गर्मियों में सबसे अच्छा समय मध्य मार्च से लेकर मई का पहला सप्ताह है, जिससे इसका हरा चारा, चारे की कमी वाले समय में उपलब्ध हो जाता है। खरीफ में इसकी बिजाई मध्य जून से जुलाई अन्त तक कर सकते हैं। अगर मानसून देरी से आता है, तो सिंचित इलाकों में पानी लगाकर इसकी बिजाई की जा सकती है।

बीज की मात्रा व बिजाई का ढंग

पौधों की उचित संख्या व बढ़वार के लिए 16–20 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ उचित रहता है। पंक्ति से पंक्ति का फासला 30 सें.मी. (एक फुट) रखकर पोरे अथवा ड्रिल द्वारा बिजाई करें। लेकिन जब मिश्रित फसल बोई जाए तो लोबिया के बीज की एक तिहाई मात्रा प्रयोग करें। बिजाई के समय भूमि में पर्याप्त नमी होनी चाहिए। लोबिया के लिए सिफारिश किए गए राइजोबियम कल्चर से बीज का उपचार करके बिजाई करें।

उर्वरक प्रबंधन

दलहनी फसल होने के कारण, लोबिया में नाईट्रोजन की अधिक आवश्यकता नहीं होती। फिर भी शुरू की अच्छी बढ़वार के लिए 10 किलोग्राम शुद्ध नाईट्रोजन (22 किलोग्राम यूरिया 46 प्रतिशत) प्रति एकड़ बिजाई के समय डालें। बिजाई से

पहले सिंचित इलाकों में 25 किलोग्राम फास्फोरस (157 किलोग्राम सिंगल सुपरफास्फेट) तथा बारानी क्षेत्रों में 12 किलोग्राम फास्फोरस (75 किलोग्राम सिंगल सुपरफास्फेट) पोरा या ड्रिल से डालें। मिश्रित खेती में उर्वरक फसल की सिफारिश के अनुपात में ही डालें।

खरपतवार प्रबंधन

गर्मी में बोई गई फसल में एक निराई–गुड़ाई पहली सिंचाई देने के बाद बत्तर आने पर करें। मानसून की वर्षा पर बोई गई फसल में एक गुड़ाई बिजाई के लगभग 25 दिन बाद करें।

सिंचाई और जल निकास

मार्च–अप्रैल में बोई गई फसल में पहली सिंचाई बिजाई के 20–25 दिन बाद तथा मई में बोई गई फसल में पहली सिंचाई बिजाई के 15–20 दिन बाद करें। आगे की सिंचाईयां 15–20 दिन के अन्तराल पर करें। इस तरह कुल मिलाकर 3–4 सिंचाईयों की आवश्यकता होती है। बरसात के मौसम में बीजी गई फसल में आमतौर पर सिंचाई की जरूरत नहीं होती है। जल–निकास का उचित प्रबन्ध करना आवश्यक है।

कीड़ों से बचाव

सूखे मौसम में लोबिया पर हरा तेला आक्रमण करता है। इसकी रोकथाम के लिए 200 मिलीलीटर मैलाथियॉन (50 ई.सी.) को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें। लेकिन यह विशेष ध्यान रखें, कि छिड़काव के 7–15 दिन बाद तक इस फसल का हरा चारा पशुओं को ना खिलाएं।

कटाई व चारे की पैदावार

लोबिया की हरे चारे के लिए कटाई 50 प्रतिशत फूल आने से लेकर 50 प्रतिशत फलियां बनने तक पूरी कर लेनी चाहिए। अन्यथा इसके बाद इसका तना सख्त व मोटा हो जाता है और चारे की पौष्टिकता व स्वादिष्टता दोनों ही प्रभावित होती है। गर्मियों में इससे हरे चारे की उपज 130–135 क्विंटल व खरीफ में 150–155 क्विंटल प्रति एकड़ मिल जाती है। इसके हरे चारे को अकेले खिलाने की बजाए तूड़ी या ज्वार, बाजरा, मक्की के हरे चारे या इनकी कड़वी के साथ मिलाकर खिलाएं। दाने की पैदावार 4–5 क्विंटल प्रति एकड़ मिल जाती है।

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

प्रमुख गतिविधियाँ

1. पशुपालक प्रशिक्षण कार्यक्रम
2. पशुपालक कॉल सेन्टर (930-000-0857)
3. नि:शुल्क SMS सेवा
4. पशु पालन सम्बंधी पाठ्य सामग्री
   (पशुधन ज्ञान, डेयरी फ़ार्मिंग मार्गदर्शिका, कैसे करें पशुपालन, मुर्गीपालन मार्गदर्शिका इत्यादि)

भैंस की प्रमुख दुधारू नस्लें

सज्जन सिंह, राजेन्द्र सिंह श्योकन्द एवं दलजीत सिंह

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

हमारा देश कृषि प्रधान देश होने के नाते लगभग 47 प्रतिशत आय कृषि जगत से अर्जित करता है। इसमें से लगभग 18 प्रतिशत आय हमें पशुओं से मिलती है। दुधारू पशुओं में गाय और भैंसों का हमारे निजी जीवन में आर्थिक तौर पर एक विशेष महत्व है। भारतीय पशु गणना के आंकड़ों से यह मालूम होता है कि पिछले 10 सालों में गाय 0.23 प्रतिशत और भैंसे लगभग 0.64 प्रतिशत की दर से बढ़ी है, भारत में भैंसों की संख्या गाय की अपेक्षा एक तिहाई है, जबकि कुल 6 करोड़ 30 लाख टन दूध उत्पादन का करीब 50 प्रतिशत भैसों से उपलब्ध होता है। पंजाब और हरियाणा में 75 प्रतिशत दूध के उत्पादन का स्त्रोत भैंस ही है। भारत के कई दूसरे प्रान्तों में भी भैंस दूध का प्रमुख साधन है जिसमें उत्तर प्रदेश एवं गुजरात प्रमुख है। भैंस के दूध में गाय की अपेक्षा अधिक पौष्टिक तत्व होते है। गाय तथा भैंस के दूध में पाये जाने वाले पौष्टिक तत्वों की मात्रा इस प्रकार हैः–

दूध के तत्व	भैंस	गाय
वसा	6.56	4.65
कुल प्रोटीन	3.89	3.38
दुग्ध शर्करा	5.23	4.91
खनिज तत्व	0.48	0.77
कुल ठोस	15.75	13.34
वसा रहित ठोस	9.19	8.71

हमारे देश में भैसों की संख्या 7.8 करोड़ है। इनका उपयोग दूध, मांस एवं बोझ ढ़ोने में मनुष्य के लिए लाभप्रद है। भारत में भैंस पालन लघु एवं सीमांत किसानों द्वारा छोटे स्तर पर अपनाया जाता है। भैंस का दूध भारत के गांवों तथा शहरों में आम तौर पर उपलब्ध रहता है। लोग इसे गाय के दूध की अपेक्षा अधिक पसन्द करते हैं। भैंसें सूखा एवं कम पौष्टिक आहार का चारा खाकर गाय के मुकाबले अधिक दुग्ध उत्पादन की क्षमता रखती है। देहातों में किसानों के पास साधारणतयः दो या तीन भैंस पाई जाती है। इनकी देखभाल स्त्रियों तथा बच्चों द्वारा की जाती है। इनसे परिवार की आय में वृद्धि होती है।

शहरों में जहां भैंस अधिक संख्या में रखी जाती है वहां इनका पालन व्यवसाय के रूप में किया जाता है। सबसे अच्छी किस्म की भैंसे उनके उद्भव क्षेत्रों से शहरों तथा औद्योगिक केन्द्रों में लाई जाती है। इनका दुग्ध काल समाप्त हो जाने पर या तो इन्हें ठीक से रखा नहीं जाता या उन भैंसों का उपयोग मांस उत्पादन में किया जाता है। इस प्रकार अच्छी नस्ल के पशु धीरे–धीरे समाप्त हो रहे है। अतः अच्छी नस्ल की और अधिक दूध देने वाली भैसों की देखभाल करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

भारत में दुधारू भैसों की सात मान्य नस्लें हैं। भैसों की बहुत बड़ी संख्या मान्य नस्लों के अन्तर्गत नहीं आती। भारत में पाई जाने वाली मान्य भैंसों के उद्भव क्षेत्र, शारीरिक लक्षण, दूध की मात्रा एवं कार्य क्षमता इस प्रकार है।

भैसों की प्रमुख दुधारू नस्लें

मुर्रा

यह नस्ल रोहतक, हिसार, जींद, नाभा और पटियाला जिलों में विशेषता पाई जाती है। इनके पशु भारी भरकम डील–डौल वाले होते है तथा इनकी गर्दन और सिर अपेक्षाकृत हल्के होते हैं। सींग छोटे और कसकर मुड़े होते है। इस नस्ल की भैसों का

लेवा विकसित होता है, रंग काला तथा पूंछ लम्बी होती है। कुछ भैसों में पूंछ का फूल भी सफेद होता है। इनका वनज 500–550 किलोग्राम होता है। अपने दुग्ध काल में मुर्रा भैसें 1800 से 3000 किलोग्राम तक दूध उत्पादन की क्षमता रखती है। इस नस्ल की भैंसे उद्‌भव क्षेत्रों के अतिरिक्त लगभग सारे देश में दूध के लिए पाई जाती है। इस नस्ल की भैसों से अमान्य भैसों का नस्ल सुधार कार्य देश एवं विदेशों में चल रहा है।

नीली रावी

इस नस्ल का उत्थान क्षेत्र सतलुज घाटी है। पंजाब में फिरोजपुर तथा पाकिस्तान के साहीवाल जिलों में यह अधिक संख्या में मिलती है। इस नस्ल के पशुओं का सिर लम्बा तथा ऊपर से बाहर निकला रहता है। आँखों के पास यह अन्दर घुसा रहता है। सींग अपेक्षाकृत छोटे, कम मुड़े हुए, गर्दन लम्बी व पतली होती है। इनका रंग काला, माथा, पैर और पूंछ सफेद होती है। इनका वनज 500–550 किलोग्राम तक होता है। अपने दुग्ध काल में इस नस्ल के पशु 1500 से 2500 किलोग्राम तक दूध देते हैं। बोझा ढोने में पशु अच्छे हैं।

महसाना

यह नस्ल गुजरात के सबरकंठ तथा महसाना जिलों में पाई जाती है। इस नस्ल की भैंसे मुर्रा भैंसों से लम्बी होती है। इनके घुटने हल्के, सिर लम्बा और अधिक भारी होता है। इस नस्ल की भैंसों के सींग लम्बे परन्तु कम मुड़े हुए होते है तथा लेवा अच्छे आकार का होता है। भैंस अपने दुग्ध काल में 1200 से 1800 किलोग्राम तक दूध देती है। इस नस्ल के पशु भारी होते हैं तथा इनकी कार्य क्षमता बहुत अच्छी है।

सूरती

इस नस्ल की भैंसें गुजरात के खेड़ा और बड़ोदा जिलों में पाई जाती है। इनका शरीर मध्यम आकार का एवं सुड़ौल होता है। इस नस्ल के पशुओं की पीठ सीधी और सींग हंसिया के आकार के होते है। इनका रंग काला या भूरा होता है। इस नस्ल की व्यस्क भैंसों का भार 450–500 किलोग्राम तक होता है। भैंसे अच्छी दुधारू होती है तथा अपने दुग्ध काल में 900–1500 किलोग्राम तक दूध देती है। इस नस्ल के पशु हल्के कार्य के लिए अच्छे है।

नागपुरी

यह नस्ल मुख्यतः महाराष्ट्र के नागपुर, अकोला और अमरावती जिलों में पाई जाती है। इनका कद छोटा और सींग लम्बे, चपटे तथा चौड़े होते है। भैसें सुस्त होती है तथा आमतौर पर भार ढ़ोने के काम आती है। अपने दुग्ध काल में इस नस्ल के पशु औसतन 700–1200 किलोग्राम तक दूध देते हैं।

जाफराबादी

यह नस्ल गुजरात के जूनागढ़, जामनगर जिलों में अधिक पाई जाती है। इस नस्ल के पशु बड़े आकार के और भारी भरकम होते है। अपने दुग्ध काल में औसतन दूध की मात्रा 1000–1800 किलोग्राम तक होती है। भैंसे हल जोतने तथा भार ढोने में सक्ष्म होते हैं।

भदावरी

यह पशु भदावरी बाह तहसील, ग्वालियर और इटावा जिलों में समान्यतयः पाए जाते हैं। इनका शरीर अपेक्षाकृत हल्का, सिर छोटा, टांगे छोटी परन्तु मजबूत होती है। पूंछ लम्बी व पतली होती है तथा इसका रंग तांबे जैसे होता है। शरीर पर कहीं–कहीं बाल होते है। व्यस्क पशुओं का भार करीब 450–500 किलोग्राम तक होता है। अपने दुग्ध काल में इस नस्ल की भैंसे करीब 1000 किलोग्राम दूध देती है। भैंसे भारी बोझ ढ़ोने में अधिक सक्षम होते हैं।

भारत में पक्की तौर पर 10–15 प्रतिशत पशु इन्हीं मान्य नस्लों के हैं। हर नस्ल के आधार पर घटिया या बढ़िया कई दर्जे के पशु है। हर नस्ल में ऐसे पशुओं की संख्या थोड़ी होती है जिनमें अपनी नस्ल के सभी गुण व लक्षण हो।

भैंसों में असफल गर्भधारण के कारण व उनका निदान

प्रवीन कुमार, मोहित अंतिल एवं दिपिन चन्द्र यादव

लाला लाजपत राय पशुचिकित्सक एवं पशुविज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

हरियाणा के आर्थिक विकास व उन्नति में पशु पालन का महत्वपूर्ण योगदान है। मुर्रा भैंस हरियाणा की आन–बान शान है। मुर्रा को काला सोना भी कहा जाता है। भैंसों की सभी प्रजातियों में मुर्रा प्रजाति की भैंस सबसे ज्यादा दूध देती है इसलिए इसके पालन पोषण व लगभग 14 महीने में एक बच्चा लेने के लिए खानपान के साथ–साथ प्रजनन प्रबंधन भी जरूरी है। प्रायः देखा गया है कि पशु पालकों को प्रजनन संबंधी समस्या का समुचित ज्ञान नहीं है। इसलिए हम आज इस लेख के माध्यम से कृत्रिम गर्भाधान में असफलता या बांझपन से उत्पन्न होने वाली समस्या के कारण व उनके निदान के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। प्रायः देखा गया है कि भैंसे गर्मी के मौसम में मद में नहीं आती तथा गर्मी ऋतु में प्रसव कम होने के कारण दूध की कीमत बढ़ जाती है तथा पशु ऊष्मीय ऊर्जा ज्यादा होने के कारण गूंगा हो जाता है मतलब मद के लक्षण कम दिखाता है, जिसके कारण पशुओं को कृत्रिम असफल गर्भाधान करवाने में कठिनाई आती है।

कृत्रिम गर्भाधान या बांझपन एक प्रजनन संबंधी समस्या है जिसमें पशु के गर्भ धारण करता है/करने में समस्या आती है। बांझपन की वजह से पशुपालक को आर्थिक हानि काफी ज्यादा होती है। पशु के गर्भधारण ना करने की समस्या के कई कारण हैं जिसमें कुछ महत्वपूर्ण तथ्य निम्नलिखित हैं:–

1. बच्चेदानी व अन्य प्रजनन अंगों की बीमारी की वजह से।
2. संक्रमित बिमारी के कारण।
3. पशु का मद में न आना, बार–बार फिरना, गूंगापन।
4. शरीर के प्रजनन अंगों में दोष।
5. गलत तरीके से कृत्रिम गर्भधारण करना।
6. पोषक में कीम के कारण।

1. बच्चेदानी व अन्य प्रजनन अंगों की बिमारी जैसे बच्चेदानी में सूजन, संक्रमण व ओवेरियन सिस्ट की वजह से पशु गर्भ धारण नहीं करता है। ओवेरियन सिस्ट पशु में हारमोन के अंसुतन की वजह से होती

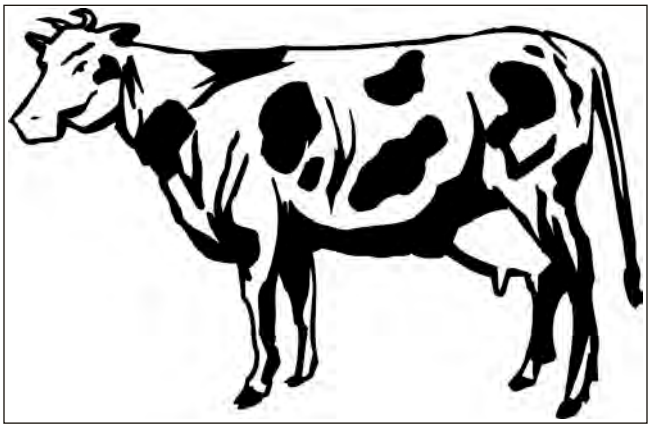

है। फेलोपियन ट्यूब के बंद होने या संक्रमित होने के कारण भी पशु बार–बार मद में आता है परन्तु गर्भधारण नहीं करता।

2. संक्रमित बीमारी जैसे कि बुसिक्रोसिस, हरपीज विषाणु बोवाईन वायरल डायरिहिया, ट्राइकोमानास संक्रमण इत्यादि की वजह से बांझपन की समस्या आती है। इनके इलावा कुछ जीवाणु, विषाणु व अन्य जैसे कि ई. कोलाई सटेफाइसोकोकस सट्रपटोकोकस कोराइनिबेकिरियम आदि।
3. पशु का मद में न आना, गूंगापन व बार–बार फिरना प्रायः यह देखा गया है कि गर्मी कि ऋतु में भैंसे मद में न आना व गूंगापन ज्यादा दिखाती है। यह गर्मी कि वजह से उत्पन्न होने वाले तनाव के कारण हो सकता है। मद में न आने के कारण पीत पिण्ड का ना जाना, अंडाशय पर किसी भी संरचना का ना होना व बार–बार मद में आकर नमी ना धारण करना के कारण हैं। समय पर गर्भाधान ना होना, बच्चे का अंदर सूख जाना, बच्चेदानी में संक्रमण का होना, समय पर अण्डे का ओवरी से बाहर न आना व सिस्टिक ओवरी व कुछ महत्वपूर्ण कारण है जिनकी वजह से पशु बार–बार मद में आता है।
4. पशु के प्रजनन अंगों में दोष जैसे कि ओवेरियन हायपोपलेजिया मतलब अंडाशय का छोटापन,

सरवाईकल के नाल का टेढ़ापन परसिस्टेन्ट हाइसन, झिल्ली का न टूटना दो विर्सजन के होने के कारण इत्यादि कि वजह से भी पशुओं में बांझपन की समस्या आती है।

5. गलत तरीके से कृत्रिम गर्भाधान करने के कारणः इसमें सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि कई पशुपालकों व इस व्यवसाय से जुड़े लोगों को मद के लक्षणों के पूर्ण ज्ञान नहीं होने के कारण मद के सही समय पर पहचान ना होने पर बांझपन की समस्या आती है। इसके अलावा कृत्रिम गर्भाधान करते समय सीमन को सही तापमान पर द्रवित करना व कृत्रिम गर्भाधान करते समय गोबर, पेशाब व बाहरी पदार्थों से कृत्रिम गर्भाधान से बच्चेदानी में संक्रमण करना इत्यादि शामिल है व कृत्रिम गर्भाधान करने वाला व्यक्ति इस कार्य में निपुण ना हो।
6. पोषक तत्वों की कमी के कारणः संतुलित आहार बांझपन की समस्या का बहुत बड़ा निदान है। प्रायः देखा गया है कि पशु पालक अपने पशुओं को संतुलित आहार नहीं देते, जिसके कारण पशुओं में बांझपन की शिकायत हो जाती है। इसलिए पशु पालकों को संतुलित आहार के बारे में पूर्ण जानकारी होनी चाहिए क्योंकि जब पशु ब्यांत के समय दूध देता है तो उसकी पोषण की जरूरत बढ़ जाती है।
    1. बांझपन की समस्या से निजात पाने के लिए कुछ महत्वपूर्ण बातों का ध्यान रखना चाहिए। पशु को संतुलित आहार दें। पशु को समय–समय पर परजीवियों की दवाई दें।
    2. पशु के आहार में खनिज मिश्रण उचित मात्रा में देना चाहिए व उसमें खनिज लवणों का अनुपात सही होना चाहिए।
    3. पशु का सही समय पर व कुशल पशु चिकित्सक से कृत्रिम गर्भाधान करवायें।
    4. यदि पशु सुबह मद में आता है तो कृत्रिम गर्भाधान शाम को करवाये व यदि शाम को आता है तो सुबह। पहले कृत्रिम गर्भाधान के लगभग 12 घंटे के अंतराल पर दूसरी बार कृत्रिम गर्भाधान करवायें।
    5. भैंसों को गर्मी ऋतु में ऊष्मीय ऊर्जा से बचा कर रखे व पशु के नहाने के लिए तालाव या साफ जोहड़ का प्रबंध करे व पशु को दिन में छायादार पेड़ के नीचे बांधे व पशु के पीने का पानी साफ व उचित तापमान पर होना चाहिए।
    6. पशु अगर लगातार 3 बार कृत्रिम गर्भाधान के बाद मद में आ जाए तो किसी अच्छे पशु चिकित्सक से पशु की जांच करवायें व उसके द्वारा दी गयी सलाह का पालन करें।
    7. पशु यदि किसी संक्रमित बिमारी से ग्रसित है ता उसका पहले इलाज करवायें।
    8. बनावटी दोष के पशुओं की जांच करवानी चाहिए तथा उनका अपने फार्म से निकाल देनी चाहिए।
    9. पशु की सुबह व शाम को मद की जांच करनी चाहिए व मद के लक्षण दिखाई देने पर पशु चिकित्सक से कृत्रिम गर्भाधान करवायें।

उपरोक्त बातों को ध्यान में रखकर पशुपालक अपने पशुओं की असफल गर्भधारण की समस्या से निजात पा सकता है।

930-000-0857

whatsapp

लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर

दूध और दूध उत्पादों में मूल्यसंवर्धन से 2022 तक किसानों की आय दोहरीकरण

रचना, मोनिका रानी एवं ऋचा खीरबाट

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

कुरियन की ''श्वेत क्रांति'' ने भारत को दुनिया में दूध का सबसे बड़ा उत्पादक बनने की पहचान दी है। वर्गीज कुरियन को ''श्वेत क्रांति के पिता'' के नाम से जाना जाता है। परिणामस्वरूप भारत दूध की कमी वाले देश से दुनिया का सबसे बड़ा दूध उत्पादक देश बन गया, जो 1998 में संयुक्त राज्य अमेरिका को पार कर गया।

डेरी उद्योग में भारत एक वैश्विक नेता है और 2017–18 में 176.35 मिलियन टन दूध का उत्पादन किया गया। भारतीय डेयरी उद्योग तेजी से बढ़ रहा है। डेयरी व्यवसाय भारत का सबसे बड़ा आत्मनिर्भर उद्योग बन गया।

भारतीय डेयरी बड़े पैमाने पर उत्पादन के बजाय जनता द्वारा उत्पादन का उत्कृष्ट उदाहरण है। देश की दूध आपूर्ति लाखों छोटे उत्पादकों से आती है, जैसे भूमिहीन श्रमिकों, महिलाओं, सीमांत, छोटे, मध्यम और बड़े किसान। भारत के लगभग 80 प्रतिशत दूध उत्पादन का योगदान छोटे और सीमांत किसानों द्वारा किया जाता है, जिसमें एक या दो जानवरों का औसत झुंड का आकार होता है। 60 मिलियन ग्रामीण परिवारों की आजीविका डेयरी क्षेत्र पर निर्भर करती है।

सबसे पहले हमें किसान की आय को दोहरीकरण की अवधारणा को समझना होगा, भारत के माननीय प्रधान मंत्री, वर्ष 2017 के अपने स्वतंत्रता दिवस के भाषण में, कहकर संपन्न हुए, हम एक ऐसे भारत का निर्माण करेंगे, जहां किसान चिंता के बिना सो सकते हैं। 2022 तक, वे आज जो कमा रहे हैं, उसके दोहरे लाभ कमाएंगे। इसके बाद, आय दोहरीकरण की नीति ने निर्माताओं, अर्थशास्त्री और सबसे महत्वपूर्ण किसानों का ध्यान आकर्षित किया। क्या दोगुना करने की मांग की है?

क्या यह किसानों की आय या उत्पादन या क्षेत्र की आय या कृषि क्षेत्र की सकल घरेलू उत्पाद है? सरकार का लक्ष्य वास्तविक आय को दोगुना करना है, जैसा कि दोहरीकरण किसानों की आय (सीडीएफआई) पर समिति की हालिया रिपोर्टों में उल्लिखित है।

भारत में डेयरी उद्योग एक प्रारंभिक छलांग के लिए तैयार है। पथ बहुत स्पष्ट है इसे अपनी वर्तमान स्थिति से सबसे आगे स्थानांतरित करना होगा, जहां इसे कृषि की सहायक कंपनी माना जाता है। लगभग 70 प्रतिशत कृषि किसानों को डेयरी किसानों के रूप में दोगुना कर दिया जाता है और दूध का एक बड़ा हिस्सा उन्हें अपने उपभोग के लिए मिलता है।

भारतीय डेयरी उद्योग एक और क्रांति के शिखर पर है, विभिन्न दूध उत्पादों से बढ़े योगदान की ओर बढ़ रहा है। भारत, एक परिपक्व डेयरी उद्योग बनने की अपनी खोज में दूध से मूल्यवर्धित डेयरी उत्पादों के लिए संगठित डेयरी क्षेत्र में दीर्घकालिक वृद्धि दृश्यता प्रदान करेगा। मूल्यवर्धित उत्पादें की मांग व्यापक आर्थिक कारकों जैसे शहरीकरण, परमाणु परिवारों, कामकाजी महिलाओं में वृद्धि और प्रति व्यक्ति खर्च में सुधार जैसे बदलावों से प्रेरित होगी।

भारतीय डेयरी उद्योग दूध और क्रीम के उत्पादन और प्रसंस्करण में संलग्न है यह उद्योग विभिन्न डेयरी उत्पादों के निर्माण में शामिल है जैसे पनीर, दही आदि। भारतीय डेयरी उद्योग खरीद, उत्पादन, प्रसंस्करण, भंडारण और डेयरी उत्पादों के वितरण में माहिर हैं। देश के रूप में भारत अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य में डेयरी उत्पादन के अपने हिस्से में सबसे पहले खड़ा है और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण योगदान देता है। भारतीय डेयरी उद्योग ग्रामीण परिवारों के एक विशाल बहुमत के लिए लाभदायक रोजगार प्रदान करता है।

वैल्यू–वर्थ में यह बताया गया है कि जब आप मूल उत्पाद लेते हैं और उस उत्पाद के मूल्य में वृद्धि करते हैं और

आमतौर पर विनिर्माण प्रक्रिया में अतिरिक्त जोड़कर या अतिरिक्त उत्पादों और या सेवाओं पर हमला करके। डेयरी उत्पादक के रूप में आप अपने स्वयं के उत्पादों को प्रसंस्करण और मार्केटिंग करके अपने दूध में अतिरिक्त मूल्य जोड़ सकते हैं जैसे पनीर, बोतलबंद दूध, दही, आइसक्रीम या मक्खन।

भारत सरकार विभिन्न केंद्रीय योजनाओं जैसे गौवंश प्रजनन और डेयरी विकास के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम और राष्ट्रीय डेयरी योजना (चरण–1) के माध्यम से डेयरी क्षेत्र को मजबूत करने के प्रयास कर रही है। सरकार से समग्र नीति–स्तर का ध्यान और सहकारी समितियों और निजी क्षेत्र से निवेश निश्चित रूप से संगठित क्षेत्र में ग्रामीण भारत के लिए आय के बढ़ते अवसरों की ओर बढ़ेगा। एक मजबूत और लचीला ग्रामीण अर्थव्यवस्था, उच्च आय वाले स्तरों के साथ भारत में उपभोग की कहानी का समर्थन करेगी।

डेयरी उद्योग में कुछ सुप्त फायदे हैं जो इसके लिए अभी तक काम कर चुके हैं, लेकिन अब एक ऐसे चरण पर पहुंच गया है जहां प्रौद्योगिकी और डेयरी फार्मिंग प्रक्रियाओं का अधिक से अधिक प्रवाह दूध और दूध उत्पादों के मूल्य में वृद्धि जैसे जरूरी है। यदि किसानों की आय को वर्ष 2022 तक दोगुना है बनाना, तो हमारे किसानों को है दूध में मूल्य संवर्धन को अपनाना होगा।

930-000-0857

whatsapp

लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर

सर्दियों में मुर्गियों की देखभाल

सूदीप सोलंकी[1], जितेन्द्र यादव[2] एवं दुर्गा गुर्जर[1]

[1]पशुचिकित्सा महाविद्यालय, नवानियां, उदयपुर (राजस्थान)

[2]अनुसंधान सहायक, राष्ट्रीय प्रतिरक्षा विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहां कृषि योग्य भूमि सीमित है इसलिए गाँवों में निवास करने वाले लोगों के जीविका का साधन मुख्य रूप से कृषि एवं पशुपालन ही है। कृषि के अतिरिक्त अन्य वैकल्पिक व्यवसाय में पशुपालन ही ऐसा व्यवसाय है जिसमें आज भी बहुत सारी संभावनाएं है। भारत में अधिकांश लोग गाँवों में ही निवास करते है, जिनकी आजीविका का प्रमुख साधन कृषि एवं पशुपालन ही होता है। इसमें कई गाँवों में मुर्गीपालन से ही अपना जीविकोपार्जन करते हैं।

आज के दौर में मुर्गीपालन एक लाभप्रद और साथ ही कम लागत व कम समय में किया जाने वाला व्यवसाय है। इस व्यवसाय को करने के लिए अधिक भूमि व अधिक पैसों की जरूरत नहीं होती है और मुर्गियों से प्राप्त अण्डा, मुर्गी की बीट, मांस आदि शरीर के लिए सुपाच्य प्रोटीन देने वाला एक मुख्य स्त्रोत है। सर्दी के मौसम में मुर्गीपालकों को विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता होती है। सर्दियों के मौसम में यदि मुर्गीपालन से अधिक लाभ प्राप्त करना चाहते हैं तो निम्नलिखित बातों को आवश्यक ध्यान में रखना चाहिए–

1. सर्दियों के मौसम में मुर्गी आवास का प्रबंधनः– सर्दियों के दिनों में पशुपालकों को मुर्गियों के आवास का विशेष ध्यान देना चाहिए। मुर्गीशाला को गरम रखने के लिए मुर्गीपालक को पहले ही सावधान हो जाना चाहिए। मुर्गियों को सर्दी से बचाने के लिए मुर्गीपालक को मुर्गीशाला के जिस ओर से ठण्डी हवाएं आती हो, वहां पर बोरियां या पर्दे लगाने चाहिए। सर्दी के मौसम में मुर्गीपालक मुर्गी–आवास को थोड़ा गर्म करने के लिए अंगीठी का उपयोग कर सकता है। साथ ही जब तक अंगीठी जलती रहे तब तक मुर्गीपालक को पास में ही बैठना चाहिए ताकि किसी भी दुर्घटना से बचा जा सके। मुर्गीपालन करते समय चूजों पर बहुत अधिक ध्यान देना चाहिए। बहुत अधिक ठण्ड होने पर चूजो के आवास के अंदर का तापमान 95 डिग्री फॉरनहाईट करना चाहिए। लेकिन ये तापमान आवश्यकता अनुसार ठण्ड कम होने पर कम कर देना चाहिए। साथ ही मुर्गीपालक को कुछ दवाओं की जानकारी भी होनी चाहिए क्योंकि ये दवाएं चूजो की रोग–प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के साथ में चूजो को सर्दी में होने वाली बीमारियों से भी बचाती है।

2. सर्दियों के मौसम में मुर्गी आवास की साफ–सफाईः–

सर्दी के मौसम में मुर्गीयों को आवास में डालने से पहले ही आवास की चारों ओर से अच्छे से साफ–सफाई कर देनी चाहिए। मुर्गीपालक को विशेष ध्यान रखना चाहिए कि आवास में आवास में कंकड ना हो एवं पानी भरा हो तो उसकी सफाई करनी चाहिए। जहां पर मुर्गीयों के दाना–पानी रखने की व्यवस्थाएं हो उनकी भी समय–समय पर सफाई करवानी चाहिए। दाना रखने वाली जगह किसी भी तरह से संक्रमण रहित हो। इसके साथ ही विराक्लीन नामक दवा बाजार में उपलब्ध है, जिसे स्प्रे द्वारा मुर्गी आवास व आहार के बर्तनों को संक्रमणरहित कर सकते है।

3. सर्दियों के मौसम में मुर्गीयों के आहार की व्यवस्थाः– सर्दियों के दिनों में सभी जानवरों एवं मनुष्य में खाना खाने की क्षमता बढ़ जाती है। उसी प्रकार मुर्गियों में भी दाना–पानी की खपत बढ़ जाती है। सर्दियों में मुर्गियों की दाना खाने की क्षमता बढ़ जाती है तथा पानी पीने की क्षमता कम हो जाती है क्योंकि वातावरण का तापमान कम होने से पानी की खपत भी कम हो जाती है। इसलिए सर्दियों के मौसम में मुर्गियों के खाने–पीने पर विशेष ध्यान देने की जरूरत होती है। मुर्गीपालक को मुर्गी आवास में हर समय दाना उचित मात्रा में रखना चाहिए ताकि मुर्गी में खाने की आपूर्ति समय से होती रहे साथ ही मुर्गीपालक को ध्यान रखना चाहिए कि मुर्गियां इन दिनों में बराबर मात्रा में दाना खा रही है या नहीं। यदि बराबर मात्रा में दाना नहीं खा रही है तो इसका मतलब है कि मुर्गियों में किसी भी प्रकार का कोई संक्रामक रोग या बीमारी होनेका आभास हो रहा है।

इस प्रकार उपरोक्त बातों को ध्यान में रखकर मुर्गीपालन किया जाए तो मुर्गीपालक सर्दियों के दिनों में मुर्गीयों को ठण्ड से बचा सकता है साथ ही अच्छा उत्पादन भी प्राप्त कर सकता है।

शूकर पालन में जैव सुरक्षा की भूमिका एवं प्रावधान

सुप्रिया यादव[1], जितेन्द्र यादव[2] एवं ममता सिंह[1]

[1]भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर (उत्तरप्रदेश)

[2]अनुसंधान सहायक, राष्ट्रीय प्रतिरक्षा विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली

शूकर पालन हमारी अर्थव्यवस्था का एक बेहद महत्वपूर्ण अंग है क्योंकि हमारे देश में निम्न एंव मध्यम वर्ग के परिवार आजीविका एवं आहार के लिए शूकर पालन पर निर्भर करते हैं। शूकर पालन कम लागत में अधिक फायदा देने वाला व्यवसाय है जिसका प्रमुख कारण यह है कि कम संसाधनों पर इनका पालन पोषण सरलता से हो जाता है एवं ये किसी भी वातावरण में सरलतापूर्वक अनुकूलित हो जाते हैं। शूकर पालन के कई फायदों के साथ ही इसके कई दुष्प्रभाव भी हैं। यह पशु कई बीमारियों के रोगाणु के प्रति संवेदनशील होते हैं और एक पशु से दूसरे पशु एवं मनुष्यों (जूनोटिक) में इन रोगाणुओं का स्त्रोत तथा उनके संचार का एक प्रमुख माध्यम है।

शूकर मांस की अधिक मांग के कारण आजकल इनका उत्पादन बड़े फार्म में किया जाने लगा है, किन्तु ये संक्रमण के प्रति बेहद संवेदनशील होते हैं जिसका उत्पादन पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इससे बचाव के लिए जैव सुरक्षा अर्थात बायोसेक्योरिटी एक प्रबल उपाय है। बायोसेक्योरिटी को उन सब गतिविधियों के रूप में परिभाषित कर सकते हैं जो हम एक क्षेत्र में बीमारियों को फैलने से रोकने के लिए अपनाते हैं। जब एक फार्म या क्षेत्र बीमारियों से ग्रस्त होता है तो उस क्षेत्र के शूकरों के स्वास्थ्य एवं उत्पादन की क्षमता पर दुष्प्रभाव पड़ता है। जिससे बचने के लिए एक उपयुक्त जैव सुरक्षा कार्यक्रम आवश्यक है।

एक सुचारू व सुगठित जैव सुरक्षा कार्यक्रम संचालित करने हेतु सर्वप्रथम एक प्रोटोकॉल तैयार करना चाहिए जिसमें निम्नलिखित महत्वपूर्ण बिन्दुओं का विश्लेषण आवश्यक है–

1. सर्वप्रथम एक सुनिश्चित रोग नियंत्रण कार्यक्रम का प्रारूप पशुचिकित्सक की सलाह से उसे क्षेत्र में होने वाली शूकरों की बीमारियों के अनुरूप तैयार करें।
2. जैव सुरक्षा प्रोटोकॉल साक्ष्य आधारित होना चाहिए तथा रोग परिक्षण का चयन आवश्यकता अनुसार करना चाहिए।
3. शूकर फार्म की स्वास्थ्य स्थिति को नियमित रूप से लिपिबद्ध करें।
4. पहले से स्थापित फार्म में नए पशु का आयात न करें। यदि नए पशुओं का आयात अनिवार्य है तो पहले उनको पुराने पशुओं से कुछ दिन अलग रखकर उनकी जांच की जाये ताकि यह प्रमाणित हो सके की वहर रोगमुक्त हैं अथवा नहीं।

5. सभी पशुओं को ऐसी जगह पर रखें जहाँ बाहरी आवागमन कम हो साथ ही पशुओं का बाहरी जीवों से संपर्क न्यूनतम हो।
6. वन्यजीवों एवं घरेलु प्रजातियों से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से संपर्क नियंत्रित करें।
7. आगंतुकों एव वाहनों के आवागमन पर नियंत्रण रखें।
8. सभी कर्मचारियों का फार्म में काम करते समय साफ दस्ताने एवं एम बूट्स पहनना अनिवार्य होना चाहिए।
9. सुनिश्चित करें कि पशुओं के लिए संतुलित आहार, संदूषण मुक्त पानी एवं वायु संचार की उचित व्यवस्था हो।
10. पशुओं का टीकाकरण एवं पेट के कीड़ों की दवा को नियमित समय पर दें।
11. बीमार एवं स्वस्थ पशुओं के रखरखाव के लिए कर्मचारियों का अलग विभाजन होना चाहिए ताकि कर्मचारियों के माध्यम से रोगग्रस्त पशु से स्वस्थ पशुओं में संक्रमण न फैले।
12. बीमार पशुओं को स्वस्थ पशुओं से अलग स्थान पर रखें व शीघ्र पशुचिकित्सक की सलाह लें।
13. समय समय पर फार्म पर होने वाली बीमारियों की जांच करते रहना चाहिए, जिससे फार्म में बीमारियों की स्थिति की जानकारी प्राप्त कर सकें व उससे बचाव के प्रबल उपाय समय रहते किए जा सकें।

कुक्कुट में तनाव विनियमन का शारीरिक तंत्र और इसके बचाव के उपाय

प्रीती सिंह[1] एवं नरेश सिंह कुंतल[2]

[1]पशु भैषज्य विज्ञान एवं विषज्ञान विभाग, [2]पशु विकृति विज्ञान विभाग, पंतनगर, उत्तराखण्ड
लाला लाजपत राय पशुचिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

शरीर के आंतरिक पर्यावरण और सामान्य शारीरिक क्रिया को होमोस्टैसिस के तंत्र द्वारा नियंत्रित किया जाता है। शरीर के सामान्य कार्यों से विचलन को तनाव के रूप में जाना जाता है। तनाव कुक्कुट के उत्पादन और स्वास्थ्य पर विभिन्न कारकों के प्रभाव के बारे में बताता है। कुक्कुट के शरीर में वृद्धि, रक्षा तंत्र और प्रजनन के लिए सीमित शरीर संसाधन होते हैं। तनाव के तहत शरीर के संसाधन को पुरर्वितरित किया जाता है और इस प्रकार विकास, स्वास्थ्य और प्रजनन को प्रभावित किया जाता है। कुक्कुट में बीमार स्वास्थ्य के लिए तनाव एक प्रमुख योगदानकर्ता है और पंखों को चुनना, वेंट पिकिंग, अंडे खाने जैसी गतिविधियों का विकास कर सकता है। गहन परिस्थितियों में रखे गए पक्षियों को लगातार उच्च मृत्यु दर के कारण, तनाव का सामना करना पड़ता है और लोगों को कुक्कुट को स्वस्थ और उत्पादक बनाए रखने के लिए भी भुगतान करना पड़ता है। लंबे समय तक तनाव की स्थिति और बार–बार तनाव कुक्कुट को कमजोर और भूखा बनाता है और इससे संक्रामक रोग विकसित हो सकते है, इसलिए कुक्कुटपालन में तनाव विनियमन के तंत्र को जानने और सफल कुक्कुट उत्पादन के लिए प्रबंधित होने से स्पष्ट रूप से पहचाना जाना चाहिए।

कुक्कुट में तनाव के सामान्य कारणः कुक्कुटपालन में तनाव के कुछ सामान्य कारण हैंः–

1. खराब ब्रूडिंग स्थिति जैसे ठंडा पानी, कम तापमान।
2. दूषित भवन/परिसर।
3. उच्च स्टिकिंग घनत्व–सीमित फीडर और पीने की जगह।
4. तापमान जैसे गर्मी और ठंड का होना।
5. टीकाकरण, हैंडलिंग, वजन, ग्रेडिंग और परिवहन के कारण दर्द, शारीरिक चोट।
6. चोंच ट्रिमिंग–दर्द और शारीरिक चोट का कारण।
7. शरीर के वजन में एकरूपता का अभाव–पैकिंग क्रम में अंतर के कारण।
8. तीव्र विकास–पोषण की सख्त आवश्यकता को पूरा न कर पाना।
9. पोस्ट टीकाकरण प्रतिक्रिया–बुखार में कम भोजन का सेवन।
10. फीड गुणवत्ता की समस्याएं–पोषण सामग्री में भिन्नता।
11. अपर्याप्त वेंटिलेशन से वायु की गुणवत्ता में गिराव।
12. क्लिनिकल या उप–रोग संबंधी बीमारी के कारण भोजन कम खाना, बुखार, दर्द आदि कम हो जाना।

तनाव विनियमन का तंत्रः तनाव विनियमन का तंत्रः थ्रेसहोल्ड स्तर को प्राप्त करने के बाद, तनाव संकट में बदल जाता है जो तीन चरणों में वर्गीकृत किया जाता हैः–

1. **अलार्म प्रतिक्रिया की अवस्था (न्यूरोजेनिक सिस्टम):** यह तनाव के अल्पकालिक विनियमन के लिए काम करता है, जिसमें सहानुभूति तंत्रिका तंत्र और अधिवृक्क मज्जा ऊतक शामिल हैं। यह लड़ाई या उड़ान यानी आपातकालीन प्रतिक्रिया को नियंत्रित करता है, जिसमें अधिवृक्क मज्जा से कैटेकोलामाइन का स्त्राव होती है जिससे रक्त में ग्लूकोज की तेजी से रिहाई होती है, यकृत में ग्लाइकोजन की कमी होती है, परिधीय रक्त परिसंचरण बढ़ जाता है, तंत्रिका गतिविधि में वृद्धि होती है। यह एंटीबॉडी के गठन को भी उत्तेजित करता है।
2. **प्रतिरोध या अनुकूलन की अवस्था (एंडोक्राइन सिस्टम):** यह तनाव के दीर्घकालिक नियमन के लिए काम करता है और इसमें अंतःस्त्रावी तंत्र की भागीदारी होती है, जिसमें हाइपोथैलेमस–पिट्यूटरी

अधिवृक्क अक्ष ;भ्च।द्ध शामिल होता है। यह कुक्कुट में कोर्टिकोस्टेरोन के संश्लेषण और रिहाई को बढ़ाता है, जो कि शरीर के कार्बोहाइड्रेट, लिपिड और प्रोटीन से ग्लूकोज बनाने के लिए जिम्मेदार होते है। ग्लूकागन और थायराइड जैसे अन्य हार्मोन भी तनाव विनियमन में शामिल हैं।

3. **थकावट का चरणः** थकावट चरण तब शुरू होता है जब कुक्कुट तनाव से उबरने में विफल हो जाता है और अधिवृक्क ग्रंथि से शरीर के भंडार और हार्मोन की उपलब्धता अपर्याप्त होती है जिससे होमियोस्टैटिक तंत्र की विफलता और मृत्यु हो जाती है।

तनाव का संकेतः तनाव की स्थिति में आमतौर पर आक्रामकता और लड़ाई, वजन कम होना, पंख बहा देना, अंडा उत्पादन में कमी, सुस्ती और सुस्त रवैया, कम भूख जैसे संकेत देखे जाते हैं।

तनाव के बचने के उपायः

1. कुक्कुट को साफ सुथरा रखें और पिजड़े को साफ करें, समय पर फर्श और पिजड़ा बदल दें।
2. कुक्कुट को एक साथ भीड़ की स्थिति में न रखे।

3. यदि कुक्कुट में संख्या में वृद्धि होती है तो संबंधित अनुपात में फीडर और वाटरर की संख्या की भी वृद्धि करे।
4. गंभीर गर्मी के दौरान शीतलन सुविधा प्रदान करते हैं।
5. सर्दियों के दौरान कुक्कुट और जगह को गर्म करने के लिए बल्ब या हीटर प्रदान करते हैं।
6. झुंड में संक्रमण की जांच के लिए समय पर टीकाकरण करे।
7. आहार में अचानक बदलाव को रोकें और सुनिश्चित करें कि आहार धीरे–धीरे बदल रहा है।

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

पशुपालन सम्बंधी जानकारियाँ पाएँ

निःशुल्क SMS (मैसेज) द्वारा

पंजीकरण हेतु- 930-000-0857 (पशुपालक कॉल सेन्टर)

(सुबह 10 से 1 बजे तक) पर कॉल करें।

पशुओं में पाचन सम्बन्धी विकार एवं निवारण

शालिनी शर्मा, ज्योत्सना मदान एवं निर्मल सांगवान

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

पशुओं में मुख्यतया निम्न पाचन सम्बन्धी विकार पाए जाते हैं:–

लैक्टिक एसिडोसिस/एक्यूटन रूमन अपच: जल्दी किण्वित होने वाले कार्बोहाइड्रेट (जैसे अनाज, सेब) अधिक मात्रा में खाने से लैक्टिक एसिडोसिस होने की सम्भावना रहती है। लैक्टिक एसिड अत्यधिक मात्रा में इकट्ठा होने से रूमन का पी–एच् कम हो जाता है व इसकी कार्यशीलता कम हो जाती है। रूमन में द्रव इकट्ठा हो जाता है। इससे पशुओं में शॉक की स्थिति भी बन सकती है।

अफारा: सामान्यतया सूक्ष्म जीवी किण्वन के फलस्वरूप रूमेण में गैंस का निर्माण होता रहता है और ये गैस डकार के रूप में निष्कासित होती रहती है। किन्तु यदि ये गैस पशु के शरीर से बाहर निष्कासित ना हो तो अफारा का रूप धारण कर लेती है। यह पतझड़ और वसंत के मौसम में तिपतिया घास और अल्फाल्फा के ज्यादा खाने से होती है। अफारे की समस्या गायों के साथ–साथ भेड़ बकरियों में भी देखने को मिलती है। इससे पशुओं को सांस लेने में दिक्कत एवं बेचैनी होने लगती है।

यूरिया की विषाक्तता: जुगाली करने वाले पशुओं में यूरिया का उपयोग करके प्रोटीन का निर्माण करने की अद्वितीय क्षमता होती है। यूरिया को रूेण माइक्रोब्स अमोनिया में परिवर्तित करते है जो कि रूमेण से शोषित होकर लिवर के द्वारा निष्क्रिय की जाती है अगर यह अमोनिया ज्यादा मात्रा में बन जाए तो पशु में विषाक्तता हो जाती है, यदि आहार में इसकी मात्रा तीन प्रतिशत से अधिक हो जाए तो पशु की सेहत के लिए हानिकारक प्रभाव होते हैं। कंपकपी, पेट दर्द, लड़खड़ाती चाल, तेजी से सांस लेना, पेट दर्द, लड़खड़ाती चाल, तेजी से सांस लेना इत्यादि लक्षण दिखाई देते हैं।

दस्त: पशुओं द्वारा अत्याधिक मल का त्यागना दस्त का प्रमुख लक्षण है। दस्त की बीमारी सबसे ज्यादा नवजात पशुओं में देखी जाती है, जब यह किसी संक्रमण से प्रभावित होते हैं या फिर मौसम संबंधी किसी स्ट्रेस से प्रभावित होते

हैं। दस्त की वजह से शरीर में जल की कमी एवं इलेक्ट्रोलाइट असंतुलन हो जाता है जिससे पशु की मृत्यु भी हो सकती है।

बैक्टीरियल अतिवृद्धि: इससे पशुओं में पौष्टिक तत्वों के अवशोषण में बाधा आती है। पशुओं के वजन में कमी आना, पेट व आंतों से गुड़–गुड़ की आवाज आना, आँतों में ऐंठन, उल्टी आना जैसे लक्षण दिखाई देते हैं।

कुअवशोषण: पशुओं में आँतों के रोग कुअवशोषण का प्रमुख कारण होते हैं। इसमें स्थिर या बार बार दस्त की शिकायत, मल में वसा का आना, वजन न बढ़ना, भूख न लगना या फिर सामान्य से अधिक भूख लगना जैसे लक्षण दिखते हैं।

चिकित्सा एवं रोकथाम

- इन रोगों के नियंत्रण हेतु स्वच्छ प्रबंधन रखने की आवश्यकता है ताकि पशुओं का जीवाणु संक्रमण से बचाव किया जा सके।
- पशुओं के मल के नमूनों का एकत्रित कर जांच के लिए प्रयोगशाला में भेजना चाहिए।
- पशुओं में उपर्युक्त लक्षण आने पर तुरंत पशु चिकित्सक को सूचित करें।
- पशु चिकित्सक के निर्देशानुसार रक्त की जांच व संभावित उपचार अवश्य करवाएं।
- रोग की पुष्टि होने पर संक्रमित पशुओं को तत्काल बाड़े के अन्य पशुओं से अलग करना चाहिए।

दूध की जीवाणिक गुणवत्ता एवं दुग्ध प्रसंस्करण में स्वच्छ अभ्यास

शालिनी अरोड़ा[1], हर्ष गुरदित्ता[2] एवं उपासना यादव[3]

[1]डेयरी विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, लाला लाजपत पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

[2]राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

[3]गृह अर्थशास्त्र संस्थान, दिल्ली विश्वविद्यालय, हौज खास, नई दिल्ली

दूध और दूध उत्पाद सूक्ष्म जीवों के लिए अत्यंत पौष्टिक भोजन हैं, जिसमें कई गुणा तक सूक्ष्म जीव बढ़ सकते है और ये दूध की गुणवत्ता को बिगाड़ने का कारण बन सकता है। सूक्ष्म जीवों की मात्रा और प्रकार कच्चे दूध और दूध उत्पाद माल में सूक्ष्मजीव की मात्रा पर निर्भर करता हैं एवं जिन स्थितियों के तहत दूध उत्पादों का उत्पादन किया जाता है जैसे तापमान और भंडारण की अवधि।

दूध एवं दूध उत्पाद को विकृत करने वाले सबसे आम सूक्ष्म जीव स्यूडोमोनस, कोलिफोर्म्स, बैसिलस, क्लस्ट्रिडियम, लैक्टिक एसिड उत्पादक बैक्टीरिया (उदाहरण के लिए स्ट्रेप्टोकोकस), खमीर और फफोंद है। डेयरी से संबंधित बीमारियां, अनुपयुक्त दूध में जीवाणिक उत्पत्ति (जैसे साल्मोनेला, लिस्टिरिया मोनोसाइटोजिन्स या कैंमपाईलोबैक्टर) एवं रोगजनक सूक्ष्म जीव युक्त दूध की खपत के कारण होती है।

इस लेख में दूध और तरल दूध उत्पादों के ऊष्मा प्रसंस्करण से संबंधित मुख्य जीवाणिक खतरों पर ध्यान केंद्रित किया गया है एवं अच्छे स्वास्थ्य अभ्यास उपायों और डेयरी उत्पाद सुरक्षा प्रणालियों के महत्व पर चर्चा की गई है।

कच्चा दूध

- स्वस्थ गायों द्वारा स्त्रावित कच्चा दूध, सूक्ष्म जीवों से मुक्त होता है तथापि, थन की नलिका के साथ जुड़े सूक्ष्म जीव थन नलिका द्वारा थन के अंदर प्रवेश होते है।
- कच्चे दूध में मौजूद अधिकांश जीवाणु बाहर और विभिन्न स्त्रोतों जैसे मिट्टी, बिस्तर, खाद, फीड और दुग्ध उपकरण से दूध में प्रवेश होते है इसलिए कच्चे दूध में जीवाणुओं का स्तर कुछ से कई हजारों तक होता है।
- जीवाणिक गुणवत्ता और कच्चे दूध के जीवाणु की रचना ऋतु के साथ भिन्न होती है।
- दूध की संभाल और प्रंसस्करण में सुधार जैसे कि बंद दूध देने की व्यवस्था में विकास, कच्चे दूध के परिवाहन के लिए थोक टैंकों के उपयोग और रेफ्रिजरेशन सिस्टम में परिवर्तन से मुख्यतः दूध में ग्राम–नाकारात्मक साएक्रोट्रोपीक सूक्ष्म जीव मुख्यतः स्यूडोमोनस जीवाणु अधिक होते हैं। रेफ्रिजरेशन तापमान पर ये जीवाणु प्रशीतन तेजी से बढ़ते हैं और प्रोटीयोलायटिक और लाइपोलाइटिक एंजाइम का उत्पादन करते है जो कि ऊष्मा प्रसंस्करण में जीवित रहते हैं।
- दुग्ध भंडारण के दौरान एंजाइम गतिविधि दूध में स्वाद, बनावट और स्थिरता में दोष उत्पन्न करता है।

कई प्रकार के रोगजनक बैक्टीरिया को कच्चे दूध से पृथक किया गया है जैसे साल्मोनेला, लिस्टिरिया मोनोसाइटोजिनेस, माइकोबैक्टीरियम, बैसिलस सीरिएंस, कैम्पिलाबैक्टर, येर्सिनिया एन्स्ट्रोकलिटिका, एस्चेरिशिया कोली और स्टेफिलोकोकस अरियस। कच्चे दूध में एक या अधिक सूचीबद्ध रोगजनक बैक्टीरिया, मूल, प्रजाति, देश की जलवायु और स्वच्छता की स्थिति पर निर्भर करते हैं।

पेस्टयुराइज दूध

पेस्टयुराइजेशन प्रक्रिया को ऊष्मा–संवेदनशील विकृत और रोगजनक जीवाणुओं को नष्ट करने के लिए लागू किया जाता है। कच्चे दूध में मौजूद जीवाणु एवं रोगजनक सूक्ष्म जीवों की क्षमता को नष्ट करने के लिए दूध का पेस्टयुराइजेशन 71.7 डिग्री सेल्सियस पर 15 सेकंड या 62.7 डिग्री सेल्सियस पर 30 मिनट तक करते है। आंकड़े बताते हैं कि बीजाणु पेस्टयुराइजेशन प्रक्रिया के लिए अत्याधिक प्रतिरोधी हैं, सूक्ष्म जीवों की तुलना में बीजाणु की निष्क्रिय करने के लिए थर्माइजेशन और पेस्टयुराइजेशन पर्याप्त नहीं हैं। पेस्टयुराइज दूध उत्पादों के खराब होने के प्रमुख कारण है–

- पेस्टयुराइजेशन से पहले साइकोट्रोफ्स जीवाणु का

विकास एवं एंजाइम का उत्पादन।

- ऊष्मा–प्रतिरोधी साइकोट्रोफ्स का विकास।
- पेस्टयुराइजेशन के बाद प्रदूषण (उपकरण के माध्यम से जैसे पंप, वाल्व, पाइप, पेस्टयुराइजर, भंडारण टैंक इत्यादि)।

सफाई और स्वच्छता प्रक्रियाओं की प्रभावशीलता प्रदूषण के स्तर और सूक्ष्म जीवों के प्रकार को बहुत प्रभावित करती है। बीजाणु–गठन जीवाणु, मुख्य रूप से बैसिलस प्रजातियां, पेस्टयुराइज दूध और दूध उत्पादों के जीवन को सीमित करता है।

यूएचटी–दूध

दूध को स्टेरलाईजेशन का उद्देश्य सभी सूक्ष्म जीवों एवं बीजाणुओं को नष्ट करना है, या कम से कम उन्हें वृद्धि के लिए असमर्थ बनाना है ताकि एक लंबे समय तक दूध की गुणवत्ता को रेफ्रिजरेटेड भंडारण के बिना प्राप्त किया जा सके।

- यूएचटी–दूध के निर्माध के लिए तापमान न्यूनतम 135 डिग्री सेल्सियस पर 1 सेकंड होना चाहिए। डेयरी उद्योग में विशिष्ट समय–तापमान संयोजन कुछ ही सेकंड के क्रम में 135 से 150 डिग्री सेल्सियस लागू होते हैं।
- यूएचटी–दूध की जीवाणु बीजाणु के परिणाम से हो सकती है, जो दूध के स्टेरलाईजेशन तापमान पर जीवित रहते है, या प्रसंस्करण के बाद दूषण जैसे पैकेजिंग सामग्री या ठंडे पानी के माध्यम से या ऊष्मा प्रक्रिया में विफलता के कारण।
- बेसिलस स्टीयरओथरमोफिलस, यूएचटी प्रसंस्करण और डिब्बाबंद या यूएचटी–उत्पादों जैसे उत्पादों को प्रभावित कर सकता है और कई तरह के दोष उत्पन्न करता है जैसे गैंस उत्पादन, एसिड उत्पादन, पतलापन, कड़वाहट और अनुचित गंध।
- कच्चे दूध के भंडारण के दौरान उत्पादित प्रोटीयोलायटिक या लिपोलिटिक एंजाइम यूएचटी प्रक्रिया के बाद दूध में अनुचित गंध, प्रोटीन की जमावट जैसे कई तरह के दोष उत्पन्न करते है और ये एंजाइम यूएचटी प्रक्रिया में भी जीवित रहते है।

स्वच्छ अभ्यास

दूध प्रसंस्करण श्रृंखला के विभिन्न चरणों, गाय को दुग्ध करने से उपभोग तक दूध और दूध उत्पादों की गुणवत्ता और सुरक्षा आश्वस्त करने के लिए नियंत्रण की आवश्यकता है इस को प्राप्त करने के लिए मूल विनिर्माण प्रथाओं का अनुपालन करना एक प्रथम प्रक्रिया है इसके अलावा, एचएसीसीपी को एक उपकरण के रूप में लागू किया जा सकता है। खतरों का आकलन करें और नियंत्रण प्रणाली स्थापित करें जो मुख्य रूप से अंत–उत्पाद परीक्षण पर निर्भर होने के बजाय प्रतिरक्षात्मक उपायों पर ध्यान केंद्रित करती हैं। दूध और दूध उत्पादकों को महत्वपूर्ण पहलुओं पर यह सुनिश्चित करना है कि कच्चे माल की गुणवत्ता सबसे अच्छी बात है, कच्चे दूध और दूध उत्पादों में उपयोग होने वाला कच्चा माल विघटन और रोगजनक जीवाणु का पेस्टयुराइजेशन एवं स्टेरलाईजेशन प्रक्रिया द्वारा उन्मूलन, प्रसंस्करण के बाद में संदूषण की रोकथाम और भंडारण के दौरान एवं उपभोग से पहले अवांछनीय सूक्ष्म जीवों की सीमा पर नियंत्रण।

दुग्ध उत्पादन एवं प्रसंस्करण में स्वच्छता

प्राकृतिक वातावरण मिट्टी, पानी, पौधों और जलाशयों में सूक्ष्म जीवों और बीजाणु बड़े पैमाने पर फैले हुए हैं इसलिए उत्पादन के दौरान कुछ डिग्री तक कच्चे दूध का प्रदूषण निश्चित है, दूध भंडारण उपकरण भी प्रदूषण के प्रमुख स्त्रोत हैं।

यह असंभव है कि कच्चे दूध से सभी जीवाणुओं को समाप्त किया जा सकता है। इसलिए सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि डेयरी फार्म में उचित सफाई, प्रदूषण को कम करना और उच्च स्वास्थ्य प्रथाओं को बनाए रखना शामिल हैं। इसी प्रकार प्रसंस्करण में सभी चरणों में, विनिर्माण संयंत्र की स्वच्छता की आवश्यक है यह सुनिश्चित करने के लिए कि उत्पाद स्ट्रीम (पुनः) प्रसंस्करण (पेस्टयुराइजेशन या यूएचटी) के बाद प्रदूषित नहीं है एवं दूध के पोस्ट–पेस्टयुराइजेशन दूषण के स्त्रोत जैसे उपकरण, पैकेजिंग सामग्री, वायु, एयरोसौल्ज, पानी, स्नेहक इत्यादि की पर भी स्वच्छता की आवश्यकता है। दुग्ध उत्पादन एवं प्रसंस्करण में स्वच्छता के उपाय इस प्रकार हैः–

- दुग्ध उपकरण को साफ करना और कच्चे दूध को 4

डिग्री सेल्सियस या उससे कम के तापमान पर तेजी से ठंडा करना और दूध को डेयरी में ऐसी स्थिति में ले जाया जाना चाहिए ताकि दूध में सूक्ष्मजीव की मात्रा से कम हो।

- दूध संग्रह टैंकरों को आईडीएफ कोड अभ्यास के अनुसार डिजाइन और बनाया जाना चाहिए।
- दूध संग्रह टैंकरों के परिवहन के दौरान, दूध का तापमान 7 डिग्री सेल्सियस से अधिक नहीं होना चाहिए।
- दूध टैंकर को कम से कम हर रोज कीटाणुरहित और साफ किया जाना चाहिए या जब भी संग्रह के बीच 4 घंटे या इससे अधिक का अंतर हो।
- सफाई और कीटाणुशोधन की पर्याप्तता की नियमित रूप से जांच की जानी चाहिए।
- दुग्ध प्रसंस्करण उपकरण का ठीक से डिजाइन एवं संचालन स्थापित किया जाना चाहिए, ताकि दूध कम से कम निर्देशानुसार सुनिश्चित तापमान एवं समय के लिए संसाधित किया जाए।
- दूध और दूध उत्पादों की के संचालन के लिए उपयोग किए जाने वाले अधिकांश उपकरण को कम से कम दैनिक सीआईपी तकनीक सिस्टम द्वारा साफ एवं कीटाणुरहित करना।
- सफाई की दक्षता सुनिश्चित करने के लिए सीआईपी तकनीक की निगरानी, यानी सफाई एजेंटों की सांद्रता, तापमान, प्रवाह, दबाव और परिसंचरण समय, आवश्यक है।
- दूध और दूध उत्पादों में शामिल लोगों के प्रशिक्षण की जरूरत है। इन कार्यक्रम द्वारा यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि प्रसंस्करण, वितरण और प्रबंधन में शामिल सभी लोग, व्यक्तिगत स्वच्छता, दुग्ध विकृति और दूध को लगातार ठंडा रखने के सिद्धांतों को समझते हैं।
- दूध को ठंडा रखने के महत्व के रूप में उपभोक्ताओं को भी शिक्षित करना होगा।
- पैकेज लेबल पर जानकारी दूध और दूध उत्पादों की बेहतर गुणवत्ता नियंत्रण हासिल करने में मदद कर सकती है।

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

प्रमुख गतिविधियाँ

1. **पशुपालक प्रशिक्षण कार्यक्रम**
2. **पशुपालक कॉल सेन्टर (930-000-0857)**
3. **निःशुल्क SMS सेवा**
4. **पशु पालन सम्बंधी पाठ्य सामग्री**
   (पशुधन ज्ञान, डेयरी फ़ार्मिंग मार्गदर्शिका, कैसे करें पशुपालन, मुर्गीपालन मार्गदर्शिका इत्यादि)

प्रसव काल में व प्रसव के पश्चात् भैंसों की देखभाल

ऋचा खीरबाट, रचना एवं मोनिका रानी

लाला लाजपत राय पशुचिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

भैंसों में प्रसव से पूर्व के लक्षण

- प्रसव के 2–3 दिन पूर्व पशु कुछ सुस्त हो जाता है तथा दूसरे पशुओं से अलग रहने लगता है।
- पशु आहार लेना कम कर देता है।
- प्रसव से पूर्व उसके पेट की मांसपेशियां सिकुड़ने या बढ़ने लगती है और पशु को पीड़ा शुरू हो जाती है।
- योनिद्वार में सूजन आ जाती है तथा योनि से कुछ लेसदार पदार्थ आने लगता है।
- पशु का अयन सख्त हो जाता है। पशु के कुल्हे की हड्डी वाले हिस्से के पास 2–3 इंच का गड्ढा पड़ जाता है।
- पशु बार–बार पेशाब करता है।
- पशु अगले पैरों से मिट्टी कुरेदने लगता है।

प्रसव काल में भैंस की देखभाल

- जहाँ तक हो सके प्रसव के समय पशु के आस–पास किसी प्रकार का शोर नहीं होने दीजिए और न ही पशु के पास अनावश्यक किसी को जाने दीजिए।
- जल थैली दिखने के एक घंटे बाद तक यदि बच्चा बाहर न आए तो बच्चे को निकालने में पशु की सहायता हेतु अनुभवी एवं योग्य पशु सहायक की मदद लें।
- बच्चे के बाहर आ जाने पर उसे भैंस द्वारा चाटने दीजिए ताकि वह सूख जाये। आवश्यकता हो तो बच्चे को साफ और नरम तौलिये या कपड़े से रगड़ कर पौंछ दीजिए ताकि उसक शरीर पर लगा सारा श्लेष्मा साफ हो जाये।
- प्रसव उपरान्त में जेर गिरने का पूरा ध्यान रखिये और जब तक यह गिर न जाये भैंस को खाने का कुछ मत दीजिए। सामान्यतः जेर निष्कासन में 6 से 8 घंटे का समय लगता है। जेर न गिरने पर पशु चिकित्सक की सहायता लीजिए।
- प्रसव के बाद जननांगों के बाहरी भाग, कोख और पूंछ को गुनगुने साफ पानी से, जिसमें पोटेशियम परमैंगनेट के कुछ दाने पड़े हों या नीम की पत्ती डालकर उबाली हो, से धो दीजिए। इसके पश्चात् पशु को गरम पेय जिसमें चोकर (500 ग्राम) या नमक पड़ा हो पीने के लिये दीजिए। यह पेय भैंस को दो दिन तक प्रातः एवं सांय देते रहिए।
- भैंस को एक–दो दिन तक गुड़ व जौ का दलिया भी खिलाना वांछनीय होगा। दो दिन के बाद धीरे–धीरे चोकर की मात्रा बढ़ाते हुए चूनी व खली आदि मिलाकर बना हुआ दाना थोड़ी–थोड़ी मात्रा में खिलाना प्रारम्भ करिये। 15–20 दिन बाद दूध की मात्रा के अनुसार दाना देना प्रारम्भ करिये।

प्रसव के पश्चात् भैंसों की देखभाल

ब्याने के पश्चात् भैंस ही नहीं बल्कि कटड़े–कटड़ी की देखरेख भी ठीक प्रकार से करें। जरा–सी असावधानी से पशुओं में जनन सम्बन्धी रोग उत्पन्न हो सकते हैं। प्रसव पश्चात् भैंस की देखरेख अच्छी तरह से होनी चाहिए ताकि किसी भी प्रकार का जनन रोग उत्पन्न न हो, दूध देने की क्षमता बनी रहे तथा पशु समय पर गर्मी में आकर गाभिन हो। आमतौर पर पशु को ब्याने के पश्चात् 2–6 घंटे के अन्दर जेर गिरा देनी चाहिए। किन्तु कमजोर पशुओं में या बच्चेदानी में रोग होने और प्रसव के समय अधिक पीड़ा के कारण जेर बच्चेदानी से अलग नहीं हो पाती और बच्चेदानी के अन्दर ही रह जाती है। कभी–कभी जनन अंगों में किसी रूकावट के कारण जेर शरीर से बाहर नहीं गिरती और बच्चेदानी में ही सड़ती रहती है। यह विकार विटामिन–ए तथा आयोडीन की कमी के कारण भी हो सकता है।

यदि पशु ब्याने के पश्चात् समय से जेर नहीं गिराए तो घबराना नहीं चाहिए और न ही किसी अनुभवहीन व्यक्ति

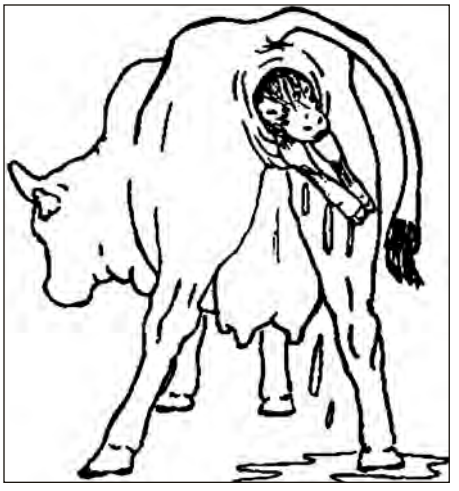

से जेर बाहर निकलवानी चाहिए। इससे बच्चेदानी में जेर के टूटने से रक्त भी बह सकता है और हाथ डालने के कारण विषाणु बाहर से बच्चेदानी में प्रवेश कर सकते हैं जिससे बच्चेदानी में सूजन और मवाद पड़ सकती है। इस कारण पशुओं का तावचक्र अनियमित होने के साथ–साथ पशु समय पर ताव में भी नही आते। ऐसे में पशुओं में गर्भधारण करने में बहुत समय लग जाता है और पशु बांझ भी हो सकता है। कुछ पशुओं में जेर बच्चेदानी में ही पड़े रहकर सड़ने लगती है और बदबूदार मवाद या गन्दा

रक्त योनिद्वार से बाहर आने लगता है। कुछ समय बाद इसका जहर बच्चेदानी से सारे शरीर में फैल जाता है और पशु आहार लेना बन्द कर देता है। पशु सुस्त हो जाता है तथा श्शरीर भार तथा दूध उत्पादन कम होने लगता है। इस विकार के कारण 1–2 प्रतिशत पशु मर भी जाते हैं। जेर के समय पर बाहर न गिरने तथा टूटने पर मान्यता प्राप्त पशु चिकित्सक द्वारा ही जेर निकलवाएं।

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

पशुपालन सम्बंधी जानकारियाँ पाएँ

नि:शुल्क SMS (मैसेज) द्वारा

पंजीकरण हेतु- 930-000-0857

(पशुपालक कॉल सेन्टर)

(सुबह 10 से 1 बजे तक) पर कॉल करें।

घोड़ों में गर्भावस्था निदान

कनिष्ट बत्तरा एवं रूमा रानी

राष्ट्रीय अध्येता प्रयोगशाला

भा.अनु.प.–राष्ट्रीय अश्व अनुसन्धान केंद्र, हिसार (हरियाणा)

प्रारंभिक, गर्भावस्था में गर्भावस्था का सटीक निदान प्रजनन के मौसम में प्रजनन क्षमता को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। एक बार गर्भवती निदान के बाद, निरंतर उपयुक्त भ्रूण वृद्धि और विकास के लिए घोड़ी की निगरानी की जा सकती है। पहले की पहचान से धन और समय की कम हानि होती है। गर्भवती घोड़ी के प्रबंधन के अलावा, गर्भावस्था के सटीक प्रारंभिक निदान के कई अनुप्रयोग हैं। जैसे वीर्य–उर्वरक क्षमता का मूल्यांकन, भ्रूण दाताओं से संबंधित निर्णय लेना, शुरुआती भ्रूण हानि का आसान और सटीक मूल्यांकन और भ्रूण को प्रभावित करने वाले कारणो का मूल्यांकन किया जा सकता है।

जब एक घोड़ी अंडाशय के 17 से 21 दिनों के बाद कामोंमाद पर वापस नहीं आती है, तो अनुमान है कि वह गर्भवती है। अन्य कारण भी सामान्य कामोंमाद अवधि को अधिक समय तक बढ़ा सकते है। जैसे अगर घोड़ी ने बच्चा दिया है तो वह कामोंमाद व्यवहार का प्रदर्शन नहीं करती है। हार्मोनल हेरफेर या स्तनपान, माध्यमिक अंडाशय, प्रारंभिक भ्रूण मृत्यु और लंबे समय पीत पिण्ड बनाए रखने के परिणामस्वरूप भी एक घोड़ी कामोंमाद अवधि को अधिक समय तक बढ़ा सकती है। इसलिए, अकेले कामोंमाद लौटने में विफलता को गर्भावस्था का पता लगाने के लिए एक विश्वसनीय तरीका नहीं माना जा सकता है ।

1. गुदा का परिस्पर्शन

गुदा परिस्पर्शन द्वारा गर्भावस्था निर्धारण सबसे आम और आर्थिक नैदानिक तकनीक है। गर्भावस्था की शुरुआत में (10 से 20 दिन), भ्रूण विषाक्तता स्पष्ट नहीं होती है और यह गर्भाशय पुटिका के साथ भ्रमित हो सकता है । हालांकि, गर्भाशय और गर्भाशय ग्रीवा लहजा गर्भावस्था में बढ़ जाती है। गर्भाशय अधिक नलीदार और आसानी से परिभाषित हो जाता है, और गर्भाशय एक लंबी, पतली रस्सी जैसी संरचना के रूप में स्पष्ट होता है। चूंकि भ्रूण बढ़ता है, इसलिए गर्भाशय (दिन 21) के सींग के आधार पर एक छोटा उतार–चढ़ाव स्पर्शनीय होता है। इस चरण में पुटिका व्यास में 30 से 40 मिमी है। गर्भावस्था में वृद्धि होने पर भ्रूण तरल पदार्थ जैसा हो जाता है, और 30 दिन तक व्यास में 40 से 50 मिमी (मुर्गी के अंडे के आकार जितना) हो जाता है। इसके अलावा, बिना भ्रूण वाला सींग बेहद दृढ़ और कष्टप्रद हो जाता है। गर्भावस्था के 40 दिनों में गर्भाशय में ज्यादा स्वर नहीं होता है और भ्रूण–तरल पदार्थ का व्यास लगभग 65 मिमी व्यास होता है। दिन 50 तक भ्रूण तरल पदार्थ बिना भ्रूण वाले सींग में विस्तार करना शुरू होता है और दिन 60 तक यह गर्भाशय के शरीर में फैलता है। परिस्पर्शन निदान, हालांकि 30 दिनों के बाद भरोसेमंद है मगर गर्भाशय लहज़ा न होना और अवधारणा के छोटे आकार होने पर यह अप्रभावी होता है। अक्सर जुड़वां बच्चों का पता लगाने के लिए खासकर यदि वे एकतरफा हैं यह अप्रभावी होता है। इसलिए, अन्य तकनीकों का उपयोग जल्द से जल्द संभावित गर्भावस्था निदान के लिए गुदा परिस्पर्शन के संयोजन के साथ किया जाना चाहिए।

2. ट्रान्सरेक्टल अल्ट्रासोनोग्राफी

घोड़ी में गर्भावस्था की स्थिति के निदान के लिए सबसे सटीक विधि अल्ट्रासोनोग्राफी है। मूल रूप से, यह तकनीक तीन स्थितियों में व्यावहारिक है जैसे प्रारंभिक गर्भावस्था निदान, गैर गर्भवती की प्रारंभिक पुष्टि, और एक से अधिक बीजगुहा का पता लगाना। चूंकि अल्ट्रासोनोग्राफ़ी अधिक आम हो गई है और पशु चिकित्सक समूह को परिष्कृत किया गया है, यह नियमित रूप से गर्भाशय और स्वास्थ्य की जांच के लिए प्रयोग की जाती है। इन नए उपयोगों में भ्रूण और भ्रूण विकास, भ्रूण व्यवहार्यता, गर्भनाल कार्य, स्वास्थ्य और भ्रूण लिंग की निगरानी शामिल है। हाल ही में अल्ट्रासाउंड उपकरणों की गुणवत्ता में प्रगति के लिए छोटी, पोर्टेबल मशीनों की उपयोगिता स्थापित की है जिनमें उच्च

स्पष्टता और परिभाषा है। इन मशीनों के साथ, गर्भावस्था निदान डिंबोत्सर्जन के 20 दिनों के बाद ही किया जा सकता है। तकनीक को करने के लिए, उपयोगकर्ता को गुदा परिस्पर्शन पर कुशल होना चाहिए। एक 5 मेगाहट्र्ज या 7.5 मेगाहट्र्ज रैखिक सरणी या सेक्टर ट्रांसड्यूसर अंडाशय, गर्भाशय के सींग, गर्भाशय शरीर, और गर्भाशय का चित्र लेती है।

3. नः स्रोत परख

इम्मुनोसॉरबेन्ट अस्सेस (एलिसा) पर आधारित प्रारंभिक गर्भावस्था किट जिसका उपयोग 35 से 120 दिन तक गर्भावस्था निदान के लिए किया जा सकता है, बाजार में उपलब्ध हैं। यह एक्वाइन कोरियोनिक गोनाडोट्रॉपिन (ईसीजी) की मात्रा पर आधारित है। भ्रूण के जरायु से कोशिकाएं अन्तःगर्भाशय पर आक्रमण करती हैं ताकि गर्भाशय प्याला बन सकें जो ईसीजी उत्पन्न करती हैं। डिंबोत्सर्जन के 40–120 दिनों के बाद रक्तोद सांद्रता में वृद्धि गर्भाशय प्याले की उपस्थिति का संकेत देती है। ईसीजी की मात्रा 120 दिनों तक बढ़ सकती है, भले ही भ्रूण की मौत हो जाये (झूठी–सकारात्मक)। यदि 40 दिनों से पहले या गर्भावस्था के 120 दिनों के बाद गर्भावस्था परीक्षण के रूप में ईसीजी परख का उपयोग किया जाता है तो एक झूठा नकारात्मक परिणाम प्राप्त किया जाएगा। साथ ही एस्ट्रोन सल्फेट भि भ्रूण द्वारा उत्पादित होता है और भ्रूण व्यवहार्यता का एक अच्छा संकेतक है। गर्भावस्था के 60 दिनों के बाद रक्तरस में और 150 दिनों के बाद मूत्र सांद्रता में इसकी वृद्धि होती है। अगर प्रजनन और अंडाशय की तारीखें ज्ञात हों तो गर्भावस्था परीक्षण के रूप में केवल निःस्रोत परख का उपयोग ठीक से किया जा सकता है।

गर्भावस्था के बाहरी संकेत

गर्भावस्था के नौवें महीने के बाद पेट का विस्तार देखा जा सकता है लेकिन सामान्य रूप से, पेट का विस्तार गर्भावस्था का विश्वसनीय संकेतक नहीं है। आखिरी तिमाही में, थन बढ़ जाता है और गर्भावस्था के अंतिम 7 से 10 दिनों में, रक्तोद जैसी चीज थन से व्यक्त होती है। जब थन स्राव एक धुआं–सफेद या सफेद रंग जैसा होता है तब प्रसव निकट होता है। एक स्पष्ट, रक्तोद की तरह स्राव कभी–कभी गर्भ के अंत में थन की युक्तियों पर जमा होता है। यह सूख जाता है और 'वैक्सिंग' के रूप में जाना जाता है। प्रसव के 10 दिन पहले कुछ घोड़ियों में वैक्सिंग देखी जा सकती है। गर्भावस्था के आखिरी कुछ दिनों में, सक्रॉसिटिक अस्थिबंधन ढीले हो जाते है और योनी अकार में बढ़ जाती है।

930-000-0857

whatsapp

लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर

घोड़ों में सर्रा रोग

कनिष्ट बत्तरा रूमा रानी एवं राजेन्द्र कुमार

राष्ट्रीय अध्येता प्रयोगशाला

भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय अश्व अनुसन्धान केंद्र, हिसार (हरियाणा)

सर्रा मुख्यत

यह रोग ट्रिपोनोसोमोसिस के रूप में जाना जाता है। सर्रा रोग रक्त परजीवी ट्राइपानोसोमा इवांसी संक्रमण के कारण होता है। सर्रा रोग बड़ी संख्या में पालतू जानवरों को प्रभावित करता है जिनमे ऊंट, घोड़े, भैंसे, गाय और कुत्ते विशेष रूप से प्रभावित होते हैं। यह रोग मक्खियों द्वारा फैलता है। यह रोग जंगली पशुओं में भी पाया जाता है। यह परजीवी संक्रमित जानवरों से मक्खियों द्वारा चूसे गए संक्रमित खून में यांत्रिक रूप से प्रेषित होता है। गर्म और आर्द्र जलवायु स्थितियां ट्रिपोनोसोमोसिस के प्रकोप में योगदान दे सकती हैं। अनुकूल वातावरण के कारण कुछ महाद्वीपों में यह बीमारी सबसे अधिक पायी गई है। सर्रा बीमारी पूरे भारत में विशेष रूप से जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश उत्तराखंड, गुजरात, राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, केरल और आंध्र प्रदेश में फैली हुई है।

रोग के लक्षण

- घोड़ों, गधे और ऊंटों में ऊष्मायन अवधि 5 से 60 दिन भिन्न होती है।
- घोड़ों में बुखार, सीधे परजीवी सक्रमण की मात्रा से जुड़ा हुआ है। यह आवर्ती प्रकरण के दौरान होता है।
- इस रोग में प्रगतिशील खून की कमी, वजन घटना और पीलिया आदि लक्षण दिखाई देते है।
- प्रगतिशील दुर्बलता तथा सुस्ती दिखाई देती है।
- घोड़ों के निचले हिस्से जैसे पैर, गर्दन का निचला हिस्सा और पेट में सूजन दिखती है।
- सीरस झिल्ली (पलकें, नाक और गुदा) में रक्त अवरोध दिखाई देता है।
- घोड़ियों में गर्भपात भी देखा गया है।

- पिछले पैरों का पक्षाघात भी होता है।

इस रोग में मृत्यु 2 सप्ताह से 4 महीने में हो सकती है। पुरानी संक्रमण 2 साल तक चल सकती है।

निदान

इस रोग के निदान के लिए कुछ परंपरागत परजीवी तकनीक जैसे गिली रक्त परत का उपयोग किया जाता है क्योंकि अब तक, सबसे अच्छा पहचानकर्ता संभावित संक्रमित मेजबान के खून को देखना है। संक्रमण गंभीर होने से पहले, इस रोग के गूढ़ संक्रमणों को प्रत्यक्ष सूक्ष्मदर्शी द्वारा ज्ञात नहीं किया जा सकता है। सूक्ष्मदर्शी बहुत संवेदनशील नहीं है, इसलिए इसे निदान की एकमात्र विधि के रूप में उपयोग नहीं किया जा सकता है। हेमेटोक्रिट सेंट्रीफ्यूगेशन तकनीक (एचसीटी) एक बेहतर विकल्प है। एचसीटी का उपयोग पशु चिकित्सालय में भी किया जा सकता है। पहचान बढ़ाने के लिए खून के बफी कोट का उपयोग किया जा सकता है। जीवित जानवरों को परीक्षण विषयों के रूप में उपयोग करने के बजाय, राष्ट्रीय अश्व अनुसन्धान केंद्र, हिसार ने ट्राइपानोसोम का पता लगाने के लिए पूरक निर्धारण परीक्षण जैसे सीरोलॉजिकल परीक्षणों का उपयोग किया है। इसमें पशु द्वारा उत्पन टी इवांसी एंटीजन के खिलाफ उत्पन्न एंटीबॉडी का पता किया जाता है। इसमें एंजाइम से जुड़े इम्मुनोसॉरबेन्ट अस्सेस (एलिसा)

विधि का उपयोग किया जाता है। जानवरों में सर्रा का पता लगाने के लिए अब बहुलक श्रृंखला प्रतिक्रिया (पीसीआर) और डीएनए जांच की जाती है जो की अति सवेंदनशील और विशिष्ट है।

उपचार

सर्रा को नियंत्रित करने के लिए परजीवी प्रतिरोधक दवायाँ दी जाती है। इस रोग में आइसोमैटामिडियम क्लोराइड और क्वनैप्रैमीन सलफेट तथा क्वनैप्रैमीन सलफेट और क्लोराइड मिश्रित दवाई का उपयोग किया जाता है। यह दवा चमड़ी के नीचे 5 मि. ग्रा. प्रति कि. ग्रा. शारीरिक भार की दर से दी जाती है। इसके इलावा कोई दवाई उपलब्ध नहीं है।

रोकथाम

घोड़ों में सर्रा की रोकथाम के लिए कोई टीका नहीं है। इस रोग की रोकथाम संक्रमित घोड़ों की पहचान और उपचार, उचित रोगवाहक नियंत्रण, और स्वच्छता पर निर्भर करता है। क्विनैप्रैमीन या आइसोमैटामिडियम क्लोराइड जैसे एंटीट्रिपैनोसोमल दवाओं के साथ पशु चिकित्सक की देख रेख में सर्रा का उपचार किया जा सकता है। घोड़ों के अस्तबल में मखियों की रोकथाम हेतु कीटनाशक दवाओं का उपयोग भी किया जा सकता है।

विस्तार शिक्षा की विभिन्न गतिविधियों (ट्रेनिंग आदि) के लिए पशु विज्ञान केन्द्र

क्र.सं.	पशु विज्ञान केन्द्र	वैज्ञानिक का नाम
1.	पशु विज्ञान केन्द्र, फ्रैन्डस कॉलोनी, नजदीक करनाल बाई पास चौक, कैथल	डॉ. रमेश कुमार
2.	पशु विज्ञान केन्द्र, वैटेनरी पोली क्लीनिक, सोनीपत	डॉ. इन्द्रजीत सिंह
3.	पशु विज्ञान केन्द्र, पांडु पिंडारा, जींद	डॉ. रमेश कुमार
4.	पशु विज्ञान केन्द्र, सिरसा	डॉ. बी.एस. श्योकन्द
5.	पशु विज्ञान केन्द्र, भिवानी	डॉ. धर्मवीर सिंह दहिया
6.	पशु विज्ञान केन्द्र, रोहतक	डॉ. राजेन्द्र सिंह
7.	पशु विज्ञान केन्द्र, युगल विहार (दाहलीवास) रेवाड़ी	डॉ. अभय सिंह यादव
8.	पशु विज्ञान केन्द्र, नजदीक मिनी सैक्ट्रेट, गुड़गांव	डॉ. कृष्ण कुमार यादव
9.	विस्तार शिक्षा निदेशालय, लुवास, हिसार	डॉ. सज्जन सिंह एवं डॉ. देवेन्द्र सिंह
10.	पशु विज्ञान केन्द्र, अम्बाला	–

कुक्कुट रोगों के लिए हर्बल (जड़ी-बूटी) औषधी

प्रीती सिंह[1] एवं नरेश सिंह कुंतल[2]

[1]पशु भैषज्य विज्ञान एवं विषज्ञान विभाग, लुवास, हिसार (हरियाणा)

[2]पशु विकृति विज्ञान विभाग, पंतनगर (उत्तराखण्ड)

कुक्कुट पालन मिश्रित खेती का एक अभिन्न अंग है और ग्रामीण आबादी का एक बड़ा हिस्सा कुक्कुट पालन पर अपनी आजीविका के लिए निर्भर है, लेकिन रोग कुक्कुट उत्पादन को बढ़ाने में एक महत्वपूर्ण बाधा है। रोग के प्रकोप के कारण, किसानों को भारी नुकसान होता है और उन्हें इसके लिए एक नया कुक्कुट का झुंड शुरू करना पड़ता है। मौजूदा पारंपरिक रोग नियंत्रण कार्यक्रम, पारंपरिक दवाओं और टीकों के उपयोग से उन गहन प्रणालियों का समर्थन करते हैं जिसमे कुक्कुट उत्पादन को बढ़ाने के लिए उच्च निवेश किया गया हो, और इसमें ये 100 से कम कुक्कुट पालन वाले छोटे पैमाने के किसानों का समर्थन नहीं करते। जिसके कारण, ये दवाएं आमतौर पर छोटे पैमाने के किसानों की पहुंच से बाहर होती हैं। एंटीबायोटिक्स प्रतिरोध, अवशेष और निकासी की अवधि भी एक प्रमुख समस्या है, जो कि निर्यात विपणन को प्रभावित करती है। इसलिए, किसानो को सस्ते और आसान स्थानीय कुक्कुट रोग नियंत्रण कार्यक्रम की जरूरत है। हर्बल उत्पाद (औषधीय जड़ी बूटियों/पौधों) के अर्क का उपयोग, कुक्कुट स्वास्थ्य को बनाए रखने के साथ–साथ उत्पादन में सुधार करने के लिए किया जाता है।

कुक्कुट रोग और उनके लिए हर्बल औषधी

न्यूकैसल रोगः यह एक वायरल बीमारी है, जो कि एंटीबायोटिक्स द्वारा ठीक नहीं किया जा सकता है। यह बीमारी बरसात के मौसम में अधिक होती है, और दूषित फीडर और पानी से, संक्रमित पक्षियों की बूंदों, नाक, मुंह और आंखों से स्राव के माध्यम से स्वस्थ कुक्कुट वाले झुण्ड में तेजी से फैलता है। अवसाद, मांसपेशियों में कंपन, सिर और गर्दन का मुड़ना, छींकना, भूख कम होना, सांस लेने में कठिनाई, नाक और आंखों का फटना, हरा दस्त, गंदे पंख, शरीर की कमजोरी और पतले खोल का उत्पादन आदि इस बीमारी के लक्षण हैं। अंडे देने वाले कुक्कुट में एलोवेरा के पौधे की पत्तियों का उपयोग दस्त को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है। शिमला मिर्च को निचोड़ (एक्सट्रैक्ट) कर पानी के साथ मिलाकर दिया जाता है। नागदोना का अर्क बिना नुकसान पहुँचाए भ्रूण में वायरस के प्रसार को रोक देता है।

कोक्सीडीओसिसः यह आम प्रोटोजोअन रोगों में से एक है जो मुख्य रूप से खराब पानी, फीड या लिटर के माध्यम से कुक्कुट में फैलता है। यह बारिश और शुष्क मौसमों में और जब सभी कुक्कुट अंदर मौजूद होते हैं तब अधिक होता है। खूनी दस्त, पंख टूटना, भूख न लगना और वजन कम होना इस बीमारी के प्रमुख लक्षण हैं। एंटीबायोटिक अवशेषों के कारण कुक्कुट मांस उपभोक्ताओं में गंभीर समस्याएं पैदा होती हैं। आमतौर पर चौलाई, पालक, करेले का रस, कुछ आवश्यक तेल, लहसुन, लौकी का फल, दालचीनी और एलोवेरा का उपयोग करके कोक्सीडायोसिस को नियंत्रित किया जाता है।

सलमोनेलोसिजः यह बैक्टीरिया की वजह से होने वाली बीमारी है, जो दूषित भोजन, पानी और बूंदों से संक्रमित उपकरणों के माध्यम से फैलती है। इस बीमारी में बुखार, दस्त (दूधिया सफेद, झागदार और चिपचिपा), सांस लेने में कठिनाई, भूख न लगना और अजीबोगरीब आवाज जैसे लक्षण दिखाई देते हैं। इस बीमारी को प्रबंधित करने के लिए शिमला मिर्च के निचोड़ (एक्सट्रैक्ट) का उपयोग करते हैं।

फोल पॉक्सः यह वायरल बीमारी है। कुन्त्जे की जड़ों का 2 भाग, सीसल की पत्तियों का 1 हिस्सा और एलोवेरा के 1 भाग को 30–45 मिनट के लिए उबालें और इसे पीने के पानी में मिलाएं और संक्रमित कुक्कुट को पीला दे या शिमला मिर्च को भी रोग दूर करने के लिए दिया जा सकता है। हल्दी और नीम की पत्तियों के मिश्रण को बाहरी घाव में

उपयोग किया जाता है। सभी जड़ी बूटियों की तुलना में एलोवेरा जड़ी बूटियों का राजा है, और कुक्कुट स्वास्थ्य को बनाये रखने में एक व्यापक एंटीबायोटिक के रूप में माना जाता हैं। यह कुक्कुट में त्वचा की जलन, सूजन और घाव के इलाज में उपयोग होता है।

श्वसन और जठरांत्र संबंधी रोगः अडूसा, तुलसी, पुदीना, और अलर्का जैसे जड़ी–बूटियों का उपयोग सांस की बीमारी के लिए किया जाता है। संक्रामक ब्रोंकाइटिस, मोकोई और भाँग द्वारा नियंत्रित किया जाता है। पुदीना और सफेदा की पत्तियों से प्राप्त आवश्यक तेल मुख्य रूप से माइकोप्लाज्मा गैलिसेप्टिकम और एच9एन 2 इन्फ्लूएंजा वायरस के संक्रमण के खिलाफ ब्रॉयलर में सुरक्षात्मक होते हैं। सीसल की पत्तियों और काली मिर्च का उपयोग पेट के रोगों को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है।

बाहरी परजीवी (एक्टोपारासाइट्स): टैम्पन, जूँ, घुन किलनी, टिक जैसे कीड़े कुक्कुट के पैरों पर खरोंच और स्केलिंग करते हैं, जिसके उपचार में रासायनिक रूप से कार्बोरिल (सेविन), एक्टोमिन, पैराफिन तेल, इंजन तेल आदि का उपयोग किया जाता है। ज्वार का पाउडर किलनी

को निकालने में मदद करता है। कुक्कुट में जूँ को रोकने के लिए प्याज की पत्तियों का उपयोग किया जा सकता है। एलोवेरा (सोए हुए क्षेत्र में जलाया जाता है या लकड़ी की राख के रूप में उपयोग किया जाता है), गेंदा और शरपुंखा का उपयोग कुक्कुट घरों में कीट विकर्षक के रूप में किया जाता है।

आंतरिक परजीवी (एंडोपरैसाइट्स): एलोवेरा, ज्वार का पाउडर और काली मिर्च का उपयोग आंतरिक कीड़े को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है। तंबाकू, मोकोई, और पंगार (एक बहुउद्देश्यीय वृक्ष) का अर्क आमतौर पर स्थानीय किसानों द्वारा हेलमिनिथियासिस (कृमि संक्रमण) के नियंत्रण में उपयोग किया जाता है। इन जड़ी बूटियों के अर्क को नमक के घोल में मिलाकर दिया जाता है। दालचीनी का तेल ट्राइकोमोनास, हिस्टोमोनस मेलेग्रिडिस और सिर की जूँ वाले परजीवी की गतिविधि को रोकने के लिए के लिए उपयोग होता है। प्याज का तेल कई हेल्मिन्थेस और प्रोटोजोआ जैसे ट्रिचिनेला स्पाइरलिस और लीशमैनिया सपा के खिलाफ बहुत लाभदायक है। कद्दू के बीज कुक्कुट में टेपवर्म के नियंत्रण के लिए अच्छे होते हैं।

930-000-0857

whatsapp

लुवास पशुपालक हेल्पलाइन नम्बर

मुर्गियों में इन्फ्लुएंजा रोग

मनीष शर्मा, दिव्या अग्निहोत्री एवं वी.के. जैन

लाला लाजपत राय पशुचिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

एवियन इन्फ्लूएंजा, एवियन फ्लू या बर्ड फ्लू के नाम से भी जाना जाता है। यह संक्रामक रोग, इन्फ्लूएंजा–ए विषाणु द्वारा फैलता है। यह पक्षियों से मनुष्यों में फैलने वाला महत्वपूर्ण रोग है। इसके लक्षण खांसी जुकाम से मिलते जुलते हैं। इन्फ्लूएंजा–ए विषाणु को प्रोटीन के आधार पर दो निम्नलिखित भागों में वर्गीकृत किया जाता है–

1. हीमएग्लूटिनिन और
2. नयूरामिनिडेस

कम से कम 16 हेमाग्लुटनिन (H1 से H16), और 9 नयूरामिनिडेस (N1 से N9) प्रोटीन पक्षियों के विषाणु में पाए जाते हैं। इस विषाणु को निम्नलिखित रूप से वर्गीकृत किया जाता है–

1. अत्याधिक रोगजनक एवियन इन्फ्लूएंजा एवं 2. कम रोगजनक एवियन इन्फ्लूएंजा

प्रसार:

1. अत्याधिक रोगजनक विषाणु रोग झुंड में तेजी से फैलता है और 28 घंटे के भीतर एक झुंड को नष्ट करने की क्षमता रखता है। कम रोगजनक विषाणु रोग कम घातक है एवं इससे अधिकतर अण्डों का उत्पादन प्रभावित होता है।
2. एवियन इन्फ्लूएंजा अधिकांश रूप से संक्रमित और स्वस्थ पक्षियों के बीच संपर्क द्वारा फैलता है
3. यह संक्रमण दूषित उपकरणों के माध्यम से भी अप्रत्यक्ष/परोक्ष रूप से फैलता है।
4. यह विषाणु संक्रमित पक्षी के नाक, मुंह और की आंखों से बहने वाले स्राव मे पाया जाता है।
5. मनुष्यों में अत्याधिक रोगजनक विषाणु रोग संक्रमित पक्षी के साथ सीधे संपर्क द्वारा फैलता है।
6. मानव से मानव में संक्रमण अप्रभावी है।

रोग के लक्षण:

मुर्गियों में इन्फ्लूएंजा बिमारी के लक्षण एवं मृत्यु दर पक्षियों में तनाव और मेजबान प्रजातियों के आधार पर निर्भर करती है।

1. **कम रोगजनक एवियन इन्फ्लूएंजा रोग:** कम रोगजनक एवियन इन्फ्लूएंजा विषाणु आमतौर पर छींकने, खांसने, आंख और नाक के रिसाव से फैलता है। इसमें श्वसन तंत्र में घाव, साइनस में सूजन, श्वास नली और फेफड़ों की सूजन जैसे लक्षण शामिल हैं। कम अंडा उत्पादन में कमी, प्रजनन क्षमता में कमी, अंडकोष में सूजन, गुर्दे की विफलता और आंत में गठिया इसके प्रमुख लक्षण हैं। स्च।प् में मृत्यु दर आम तौर पर कम होती है। इस रोग की तीव्रता अन्य जीवाणु एवं विषाणु जनित बिमारियों के साथ बढ़ जाती है।
2. **अत्यधिक रोगजनक एवियन इन्फ्लूएंजा रोग:** अत्यधिक रोगजनक एवियन इन्फ्लूएंजा रोग मुर्गी, टर्की और अन्य पक्षियों का गंभीर रोग है जिसमे मृत्यु दर अत्याधिक होती है। इस रोग के कारण मृत्यु दर 100% तक होती है। अधिक तीव्र बीमारी में किसी भी लक्षण के आभाव में भी में मृत्यु दर 100% तक हो जाती है। इस रोग में सूजन एवं नील पड़ना, टागों और पैरों व मांसपेशियों में रक्तस्राव हो जाते हैं। मुंह तथा नाक से खून का रिसाव भी होता है।

पशु–पक्षियों से मनुष्यों में फैलने वाली बीमारी

पक्षियों से मानव संक्रमण आमतौर पर दुर्लभ है, सबसे अधिक मानव रोग यूरेशियाई H5N1 अत्याधिक रोगजनक एवियन इन्फ्लूएंजा से संक्रमण से हुए है। मानव में एवियन फ्लू संक्रमण के लक्षण तनाव एवं विषाणु पर निर्भर करते हैं। H5N1 विषाणु से मनुष्यों में फ्लू जैसे लक्षण दिखते हैं जैसे कि खांसी, अतिसार, श्वास, तेज बुखार, सिरदर्द, मांसपेशियों में दर्द, नाक बहना आदि।

रोकथाम के उपाय:

1. स्वच्छता का पूर्णतः ध्यान रखें, पालतू या जंगली पक्षियों के संपर्क में आने से बचाव, खान–पान के बर्तन इत्यादि का ध्यान रखने से एवियन इन्फ्लूएंजा रोग का जोखिम कम किया जा सकता है।
2. मुर्गी फार्म पर आल इन आल आउट प्रक्रिया का पालन अनिवार्य है और अत्यंत उपयोगी है।
3. जीवित रोगग्रस्त पक्षी बाजारों या अन्य माध्यमों से वापस मुर्गी फार्म पर नहीं लाने चाहिए।
4. वे लोग जो नियमित रूप से पक्षियों के साथ संपर्क में नहीं आते, उन्हें एवियन इन्फ्लूएंजा रोग होने की बहुत कम सम्भावना होती है। कुक्कुट पालन, पक्षियों के रख रखाव करने वाले मजदूर, वन्यजीव विशेषज्ञ, पशुचिकित्सक अदि में रोग होने की सम्भावना अधिक होती है।
5. कुक्कुट को बाहरी पक्षियों से विशेष रूप से जंगली पक्षियों और उनके कचरे से अलग रखना चाहिए।
6. संक्रमण नियंत्रण और व्यक्तिगत सुरक्षा उपकरण के उपयोग द्वारा एवियन इन्फ्लूएंजा संक्रमण को कम किया जा सकता है।
7. आँख, नाक, मुंह और हाथों की रक्षा करना महत्वपूर्ण है, क्योंकि ये विषाणु शरीर में इन्हीं माध्यमों से प्रवेश करता है।
8. उपयुक्त व्यक्तिगत सुरक्षा उपकरण एपरन, दस्ताने, जूते या बूट कवर, सुरक्षा चश्मे का उपयोग भी अनिवार्य है।

इलाज:

1. इन्फ्लूएंजा वायरस के संक्रमण से ग्रस्त पक्षियों के लिए कोई विशिष्ट उपचार नहीं है। एवियन इन्फ्लूएंजा बीमारी संक्रमित पक्षियों को मार के भूमि में दबा दिया जाता है।

2022 तक किसानों की आय दोगुनी करने का लक्ष्य : सज्जन

सात दिवसीय डेयरी फार्मिंग का प्रशिक्षण आयोजित

कार्यक्रम | लुवास की तरफ से आयोजित प्रशिक्षण शिविर में 32 प्रतिभागियों ने लिया हिस्सा

सूकर पालन से आमदनी बढ़ाने के तरीके बताए

जागरण संवाददाता, हिसार : लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशुविज्ञान विश्वविद्यालय की ओर से सात दिवसीय सूकर पालन से उद्यमिता विकास पर प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया गया। यह कार्यक्रम पांच से 11 फरवरी तक चला। इस प्रशिक्षण में 32 प्रतिभागियों ने हिस्सा लिया। विस्तार शिक्षा निदेशक डा. आरएस श्योकंद ने कहा कि सूकर पालन ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में आमदनी का बड़ा स्रोत है। इसका व्यवसाय अपनाकर हम रोजगार प्राप्त कर सकते हैं। सूकर पालन कम कीमत पर और कम समय में अधिक आय देने का ...

प्रशिक्षण से संबंधित प्रमाणपत्र के साथ प्रतिभागी।

की देखभाल, सूकर के उत्पादों की बिक्री से संबंधित और आवास प्रबंधन आदि के बारे में विस्तार से बताया गया। प्रशिक्षण कार्यक्रम के दौरान प्रतिभागियों को राजकीय सूकर प्रजनन फार्म हिसार का भ्रमण भी करवाया गया। समापन समारोह में प्रतिभागियों ने भी अपने विचार व्यक्त किये एवं उन्होंने कहा कि प्रशिक्षण कार्यक्रम में उन्हें सूकर पालन के बारे में कई महत्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त हुई हैं तथा इस क्षेत्र में उद्यम स्थापित करने के लिए उनका आत्मविश्वास बढ़ा है जो उन्हें अपना सूकर पालन उद्यम स्थापित ...

दूध में मिलावट गंभीर समस्या, इससे निपटना होगा : डा. सेठ

मिलावट रोकने के लिए सरकार उठा रही है कदम : डा. गुलाटी

वैज्ञानिक डा. रमन सेठ कार्यशाला को सम्बोधित करते (इनसेट में) व कार्यशाला में मौजूद वैज्ञानिक व पशुपालक।

सूकर पालन बन सकता है बड़ा व्यवसायः श्योकंद

लुवास में हुआ सात दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम

लुवास के वैज्ञानिकों के साथ फार्म पर सूकर पालन का कार्य देखने पहुंचे प्रशिक्षणार्थी।

भास्कर न्यूज | हिसार

पानी की तरह दूध से भी बीमारियों का खतरा, इसलिए शुद्धता जरूरी

लुवास में डेयर फार्मिंग प्रशिक्षण में 99 किसानों ने लिया हिस्सा

लुवास में किसानों व युवाओं के प्रशिक्षण के समापन अवसर पर मौजूद पशुपालक।

भास्कर न्यूज | हिसार

लुवास में 11 से 17 सितंबर को डेयरी फार्मिंग प्रशिक्षण में 99 किसान शामिल हुए। प्रशिक्षण ...

ने किसानों को कहा कि भारत दुग्ध उत्पादन की दृष्टि से दुनिया में पहले स्थान पर है। मगर दुग्ध गुणवत्ता के बारे में हम अभी भी निर्धारित मापदंडों में खरे नहीं उतर पाए। जिस प्रकार पानी से बीमारियां ...

दो दिवसीय पशु पालन अधिकारी कार्यशाला का आयोजन, एसीएस डॉ. सुनील कुमार गुलाटी ने किया उद्घाटन

पशु पालन को व्यवसाय तक ले जाने के लिए केवल तकनीकी ही नहीं पशुपालकों में जागरूकता भी जरूरी

60 परियोजनाओं पर हो रहा कार्य

दूध से बने उत्पादों से आय बढ़ाने के तरीके बताए

लुवास में दो दिवसीय पशुपालन अधिकारी कार्यशाला का आयोजन

मुंहखुर और गलघोंटू बीमारियों के लिए तैयार की जाएगी वैक्सीन

60 अनुसंधान परियोजनाओं पर काम

दुधारू पशुओं में बांझपन, दूध से बने पदार्थों में मिलावट विषय पर शुरू हुई कार्यशाला

अमर उजाला ब्यूरो

हिसार। लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय हिसार तथा पशुपालन एवं डेयरी विकास विभाग हरियाणा द्वारा विश्वविद्यालय के वेटरनरी सभागार में शनिवार को दो दिवसीय पशुपालन अधिकारी कार्यशाला का शुभारंभ हुआ। कार्यशाला का मुख्य विषय दुधारू पशुओं में बांझपन, दूध उत्पादों का मूल्य संवर्धन एवं दूध और दूध से बने पदार्थों में मिलावट है। मुख्य अतिथि अतिरिक्त मुख्य सचिव, पशुपालन एवं डेयरिंग विभाग हरियाणा (आईएएस) डॉ. सुनील कुमार गुलाटी ने कार्यशाला का उद्घाटन किया। लुवास अनुसंधान डॉ. गुरदियाल सिंह ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की। पशुपालन एवं डेयरी विभाग हरियाणा महानिदेशक आईएएस डॉ. हरदीप सिंह विशिष्ट अतिथि के रूप में और मंच पर उनके साथ लुवास के विस्तार शिक्षा निदेशक डॉ.

दीप जलाकर कार्यशाला का उद्घाटन करते मुख्य अतिथि एसीएस।

आरएस श्योकंद, पशुचिकित्सा महाविद्यालय के अधिष्ठाता डॉ. दिवाकर शर्मा, अनुसंधान निदेशक डॉ. प्रवीण गोयल उपस्थित रहे। इस कार्यशाला में पूरे प्रदेश से उपनिदेशक (पशुपालन एवं डेयरी), उपमंडल अधिकारी (पशुपालन) तथा पशुचिकित्सक भाग ले रहे हैं। इस अवसर पर मुख्य अतिथि द्वारा प्रदेश से आए प्रगतिशील किसानों को सम्मानित किया गया। पशुपालन विभाग के महानिदेशक डॉ. हरदीप सिंह ने विभाग के कर्मचारियों की प्रशंसा करते हुए आश्वासन दिया की भविष्य में विभाग पशुपालन विस्तार शिक्षा पर ओर अधिक ध्यान देगा ताकि सरकार के विभिन्न ...

लुवास में एनडीआरआई करनाल के वैज्ञानिक डॉ. रमन सेठ का खुलासा

देश में 70 प्रतिशत दूध के सैम्पल मिलावटी

विशेषज्ञों ने दूध उत्पादों के संवर्धन एवं इनमें मिलावट पर की चर्चा

व्यवसाय अपनाने वाली महिलाएं सम्मानित

एक ही वैक्सीन से मवेशियों की मुंहखुर एवं गलघोंटू बीमारी होगी दूर

कार्यशाला को सम्बोधित करते अतिरिक्त मुख्य सचिव डा. सुनील कुमार गुलाटी।

लुवास में डेयरी फार्मिंग में आने वाली चुनौतियों पर किसानों को दिया प्रशिक्षण

पशुपालन क्षेत्र में किसानों को आत्मनिर्भर बनाने की कवायद

पशुओं में बांझपन की बढ़ रही समस्या, मंथन को वैज्ञानिकों की कार्यशाला आज

इन 3 विषयों पर होगा मंथन

- दुधारू पशुओं में बांझपन।
- दूध उत्पादों का मूल्य संवर्धन।
- दूध और दूध से बने पदार्थों में मिलावट।

विवि के पूर्व व पशुपालन विभाग के महानिदेशक डा. हरदीप भी करेंगे शिरकत

शिविर | लुवास में चल रहा पशुपालन प्रशिक्षण कार्यक्रम संपन्न, किसानों को किया पशुपालन के लिए जागरूक

83 युवक-युवतियों ने लिया डेयरी फार्मिंग का प्रशिक्षण

हिसार | लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय में 5 से 11 सितंबर को डेयरी फार्मिंग प्रशिक्षण का आयोजन किया गया। इस प्रशिक्षण में 115 किसानों ने भाग लिया। समापन समारोह में मुख्य अतिथि विस्तार शिक्षा निदेशक डॉ. आर एस श्योकंद ने प्रशिक्षणार्थियों को प्रशिक्षण पत्र दिए। संचालन डॉ. सरिता द्वारा किया गया। इसमें पशुपालकों को पशुओं की नस्लें, नवजात शिशुओं की देखभाल, संतुलित पशु आहार एवं खनिज मिश्रित खिलाने का महत्व पशुपालन एवं पशु प्रबंधन की जानकारी ...

प्रशिक्षण कार्यक्रम के समापन समारोह में प्रतिभागियों को सम्मानित करते अतिथि।

ये जानकारियां दी गई प्रशिक्षण कार्यक्रम में

किसानों को दिलाई पशुओं को खनिज मिश्रण खिलाने की शपथ

लुवास द्वारा विकसित हरनाली भेड़।

लुवास द्वारा विकसित हरधेनु गाय।

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय
हिसार – 125004 (हरियाणा)